शानी

शालवनों का द्वीप

भूषणलाल कौल
प्राध्यापक,
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर - कश्मीर ।
११-I-१९६६.

BUSHAN LAL KAUL
LECTURER
HINDI DEPTT:
J&K UNIVERSITY
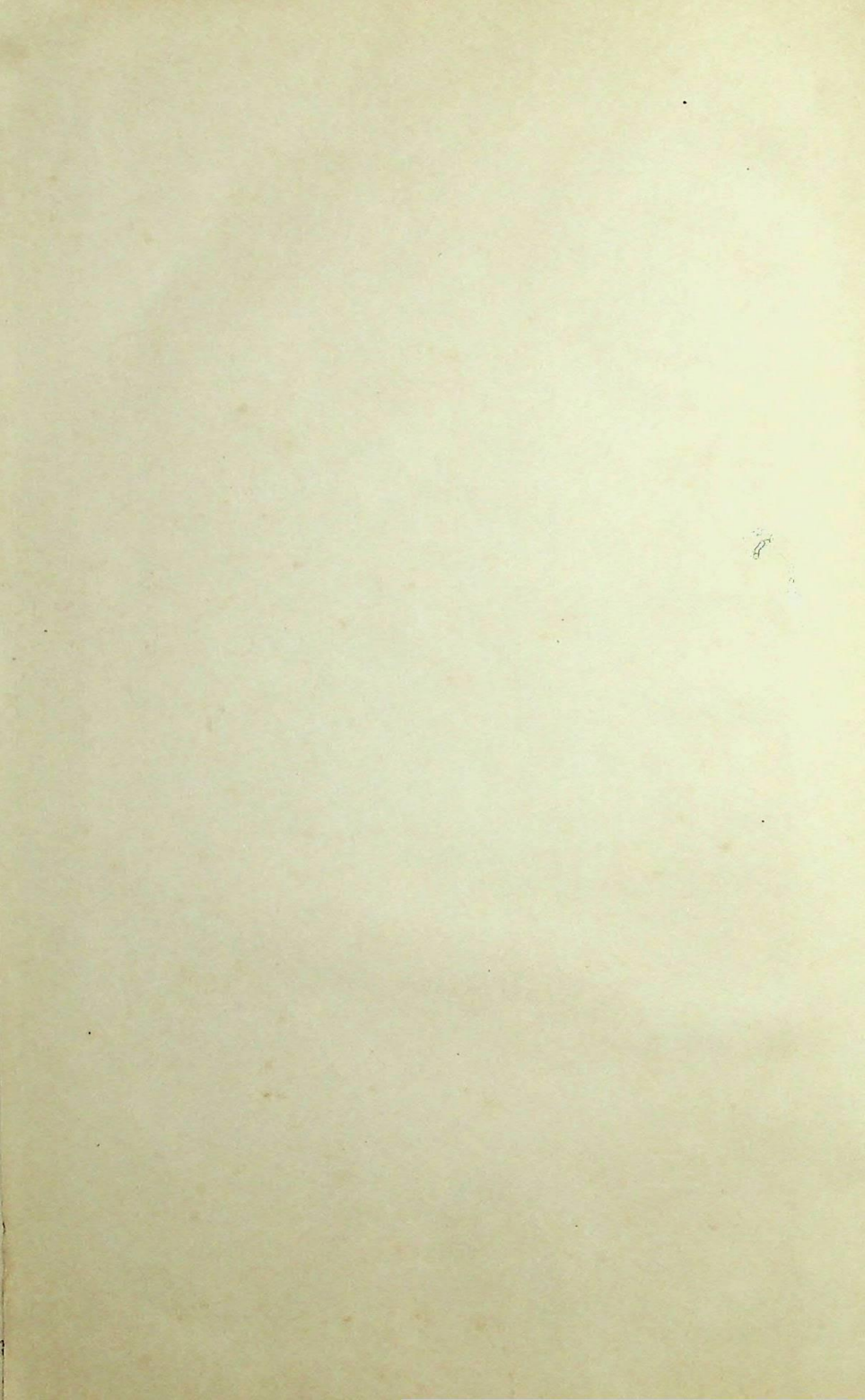
शाल वनों का द्वीप
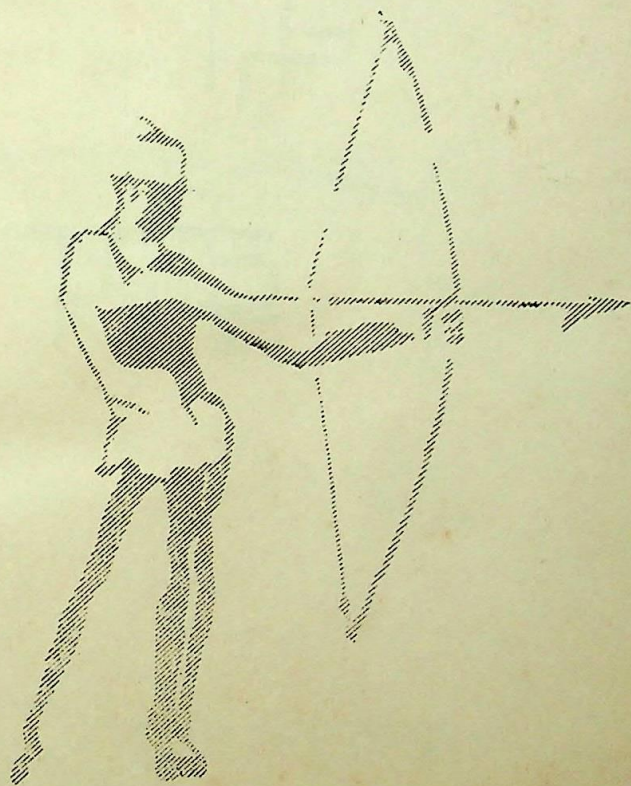
शाल वनों का द्वीप

शानी

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली-६ . पटना-६

दो शब्द

हिन्दी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा मंत्रालय के तत्वावधान में पुस्तकों के प्रकाशन की विभिन्न योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं। हिन्दी में अभी तक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नहीं है, इसलिए ऐसे साहित्य के प्रकाशन को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह तो आवश्यक है ही कि ऐसी पुस्तकें उच्च कोटि की हों, किन्तु यह भी ज़रूरी है कि वे अधिक महंगी न हों ताकि सामान्य हिन्दी पाठक उन्हें खरीदकर पढ़ सकें। इन उद्देश्यों को सामने रखते हुए जो योजनाएँ बनाई गई हैं, उनमें से एक योजना प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकें प्रकाशित करने की है। इस योजना के अधीन भारत सरकार प्रकाशित पुस्तकों की निश्चित संख्या में प्रतियाँ खरीदकर उन्हें मदद पहुँचाती है।

प्रस्तुत पुस्तक इसी योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की जा रही है। इसके प्रकाशन की व्यवस्था प्रकाशक ने स्वयं की है तथा इसमें शिक्षा-मंत्रालय द्वारा स्वीकृत शब्दावली का उपयोग किया गया है।

हमें विश्वास है कि शासन और प्रकाशकों के सहयोग से प्रकाशित साहित्य हिन्दी को समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध होगा और साथ ही इसके द्वारा ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित अधिकाधिक पुस्तकें हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगी।

आशा है यह योजना सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय होगी।

ए० चन्द्रहासन
निदेशक
केंद्रीय हिन्दी निदेशालय

भूमिका

अपने मित्र और साथी श्री शानी की इस रचना पर दो शब्द लिखते हुए मुझे एक साथ गौरव भी है और हर्ष भी। उन्होंने बस्तर में मुझे जो उदार सहयोग दिया, उससे पहाड़ी-माड़िया-गोंड़ों के सामाजिक जीवन और नृतत्व के अध्ययन की सफ-लता में मुझे अत्यन्त ठोस सहायता मिली।

आज उन दिनों की कोई भी चर्चा अथवा उन पहाड़ी-माड़िया-गोंड़ों की कोई भी बात मुझे सहसा नास्टेलजिया और सुखद स्मृतियों से भर देती है। मैं अबूझ माड़-पहाड़ियों की तराई वाले एक गाँव ओरछा में अपनी पत्नी के साथ डेढ़ वर्ष रह गया—ऐसे क्षेत्र में जो आज भी भारत का सबसे अधिक अछूता, पिछड़ा हुआ और बिरला-बसा इलाका है। इस तेज़ी से बदलते संसार में ओरछा के लोग आज भी अपनी सैकड़ों बरस पुरानी, ठेठ पारम्परिक लेकिन सम्भवतः सबसे अधिक मूल्यवान जीवन-पद्धति से चिपके हुए हैं और उसे किसी कीमत पर भी छोड़ना नहीं चाहते।

एक माड़िया गोंड़ का घर पहाड़ियों, वनों और नालों पर होता है। यों गाँव के दामन से लगकर बहने वाली नदी, जिसे ओरछा वालों ने अपने गाँव के नाम पर नाम दे रखा है, के तट पर धान के खेत देखे जा सकते हैं, लेकिन गोंड अथवा जैसा कि वे लोग अपने को पुकारते हैं कोईतूर लोग, खेती की प्राचीनतम पद्धति 'दाही' को छोड़ने के लिए आज भी कतई तैयार नहीं। यहाँ ज्वार, दालें, सेम, लौकी, आलू और दूसरी कुछ सब्जियाँ पहाड़ी-वन को काटने-जलाने, साफ़ करने और बोने की सरलतम-पद्धति के अनुसार उगाई जाती हैं। जिन हथियारों का उपयोग किया जाता है वे हैं केवल कुदाली और कुल्हाड़ी।

लेकिन ये वनीय-पहाड़ उनके केवल खेत नहीं हैं—ये अनेक घरेलू उपयोग की चीज़ों—मसलन, पत्तल-दोने या टोकनी-चटाई आदि के वृक्ष वन या बाँस-वन के महत्वपूर्ण-भण्डार हैं। वन घने हैं, जंगल प्राणों या धन से भरपूर और कभी-कभार तीर-कमान से किया हुआ चीतल, सांभर, खरगोश या बनमुर्गी का शिकार उनके खाने की एकरसता को तोड़ता है। वर्षा के दिनों में इन्हीं पहाड़ियों से अनेकों

छोटे-छोटे और तेज़ झरने फूट आते हैं जिसके जल को खेतों के पास रोककर बेशुमार मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

यही नहीं, इन पहाड़ियों में इनकी और भी व्यक्तिगत और निजी सम्पदा छिपी हुई है—इन्हीं के इस या उस पार, असंख्य छोटे-छोटे समूहों में शेष कोईतूर जाति बसती है, जो वास्तव में किसी भी एक जगह नहीं बसती, बनजारों की तरह दस जगह बसती है, दस जगह उजड़ती है। इन्हीं पहाड़ी के पार वाले नन्हें-नन्हें गाँव से ओरछा के नवयुवकों के लिए वधुएँ आती हैं अथवा यहाँ की नवयुवतियाँ वधू बनकर पहाड़ी पार के गाँवों को जाती हैं और इस तरह सारे अबूझमाड़ की कोईतूर जाति एक-दूसरे से रक्त-सम्बन्धी रूप में सम्बद्ध रहती है।

त्यौहारों के अवसर पर—मसलन, बसंत-ऋतु में मनाए जाने वाले शृंगार पर्व 'क़ाकसार' पर कोईतूर—युवक पहिले एक और फिर दूसरे गाँवों में धार्मिक समारोह मनाने, युवतियों के साथ उन्मुक्त होकर नाचने-गाने, जी खोलकर शराब पीने अथवा शामों को रंगीन और दिलचस्प बनाने के लिए जुट जाते हैं। इन्हीं उत्सवों में अलग-अलग गाँवों के युवक और युवतियों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित होते हैं और अक्सर ये ही सम्बन्ध अबूझमाड़ की अनेक शादियों के आधार बनते हैं।

कोईतूर जाति मूलतः सुखी लोगों का समुदाय है और उनके बीच की जिन्दगी मेरे जीवन का एक अत्यन्त सुखद अनुभव। अक्सर अलस्सुबह और देर-गई शामों को, गाँव के पास वाले वन के किसी सलपी पेड़ के गिर्द जुटने वाले लोगों में मैं भी शामिल हो जाता। एक जलती हुई अँगीठी को घेरकर हम लोग बैठ जाते और अपने-अपने शाल-पान के दोने से पेड़ की ताजा उतरी सलपी घूँट-घूँट पीते हुए गाँव-जवार की चर्चा करते। सवेरे के अवसरों पर सारे दिन का कार्यक्रम यहीं तैयार होता। अगर कोई उत्सव आदि का आयोजन होना हो तो सारी सामग्री तैयार है अथवा नहीं, यह देखा या विचार किया जाता। हरेक को अपने परिवार की ओर से सूअर, मुर्ग या अनाज आदि पूजा के लिए भेंट करना पड़ता। किसी विशेष 'लस्के' अथवा पुरोहित को किसी पड़ोसी गाँव से निमंत्रित करने पर विचार-विमर्श किया जाता।

स्वयं ओरछा में एक नहीं तीन-तीन पुरोहित हैं। लोगों की आस्था है कि इन पुरोहितों में देवी को आमंत्रित कर अपने शरीर पर धारण करने की असामान्य क्षमता होती है और यह कि लोग केवल इनके ही माध्यम से अपने देवों के साथ सीधे-सीधे बातें कर सकते हैं। ऐसे उत्सव बड़े उत्तेजक होते हैं। 'लस्के' अथवा पुरोहित नगाड़े की धुन पर पहिले तो उन्मुक्त और खुला नृत्य करते हैं फिर थमकर, काँपती हुई उत्तेजक और देव-सुलभ वाणी में बातें करते हैं। ये लोगों को अपना कर्त्तव्य-पालन करने, खेतों की देखभाल करने और नियमानुसार चढ़ाव देने की सलाह देते हैं।

लेकिन कभी-कभी गाँव की खुशहाल ज़िन्दगी को आतंकित करने वाली दुर्घटनाएँ भी हो जाती हैं जैसी कि एक बार हमारे वहाँ रहने के दौरान हुई। हमारे पड़ोस में रहने वाली एक नवयुवती को एक आदमख़ोर शेर ने दिन-दहाड़े मार डाला। वह गाँव की कुछ और युवतियों के साथ जंगल में पत्ते तोड़ने गई थी और यह घटना घटी। दूसरी युवतियाँ चीख मारती हुई गाँव भागी आई लेकिन क्या हो सकता था ? आदमख़ोर शेरों का भय कोईतूरों में निरन्तर बना रहता है क्योंकि ऐसी मौत सम्भवतः सबसे अधिक भयावह होती है।

खतरे और भी हैं और वे हैं बीमारियाँ, जिनका अन्त कई बार मृत्यु के साथ होता है। चेचक इनमें सबसे अधिक प्राणलेवा है। कोईतूर लोगों का विश्वास है कि देवी माता-दाई, जिस व्यक्ति से रुष्ट होती है, उसे अपने चंगुल में ले लेती है। चेचक के दाने इस बात के चिन्ह हैं कि देवी ने व्यक्ति को आक्रांत कर लिया है। ऐसे अवसर पर सारी रात नगाड़े बजते हैं और माता-पुजारी चेचकग्रस्त व्यक्ति पर निरन्तर मयूरपंख झलता है, इस विश्वास के तहत कि बीमार को किसी अलौकिक शक्ति का संरक्षण प्रदान किया जा रहा है। फिर 'लस्के' देवी को आमंत्रित करता है। देवी बताती है कि वह क्यों नाराज़ है और उसे प्रसन्न करने के कौन-कौन से उपाय किए जा सकते हैं।

बावजूद इन समस्याओं, खतरों तथा सिर पर निरन्तर मँडराने वाले भय के, कोईतूर लोग प्रसन्नचित्त रहते हैं। नाच, गाने और शराब उन्हें प्रिय है और उनके साथ बिताए हुए ख़ूबसूरत दिनों के लिए मैं मन-ही-मन कृतज्ञ हूँ। विशेषकर वे शामें भुलाना कठिन है, जो मैंने किसी परिवार के साथ, अहाते के भीतर जलने वाली गर्म अँगीठी के गिर्द बैठकर, जंगली जानवर, फसल या आनेवाली किसी बाजार-यात्रा पर चर्चा करते हुए बिता दी हैं। ऐसी ही चंद वे रातें थीं, जो मैंने घोटुल में बिताई—घोटुल, जहाँ शाम होते ही गाँव का सारा युवा-रक्त इकट्ठा हो जाता है। युवक और युवतियाँ पारस्परिक गीत गाते और ऐसे धीमे सधे हुए और लययुक्त कदमों के नृत्य करते हैं जो उनकी विलक्षण संस्कृति के ही अनुरूप होता है।

और मेरी स्मृति में बसे हुए हैं सबसे अधिक स्वयं ओरछा के गूमा, बैरी, मासा और रेको-जैसे लोग जो मेरे और पत्नी के सबसे घनिष्ठ मित्र थे। फिर वहाँ का पटेल उसेन्डी लकमा था जिसने बेहद उदारतापूर्वक न केवल समय, आतिथ्य और ध्यान दिया बल्कि कोईतूर लोगों की जीवन-पद्धति समझने में मेरी बड़ी मदद की। शायद हमारे ये मित्र नृतत्वशास्त्र का पारिभाषिक अर्थ अंत तक नहीं जान पाए लेकिन एक जीवन-पद्धति को समझने के लिए निरीक्षण तथा उसका एक हिस्सा बनकर चलना कितना जरूरी है, यह वे अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने हमें अपने समाज में बिलकुल एक पारिवारिक सदस्य की तरह स्वीकार किया और

'पेपी' तथा 'पेरी' (पिता के बड़े भाई और उसकी पत्नी) कहकर पुकारा। बाहरी रूप के पीछे भी, जो मनुष्य को अलग-अलग संस्कृतियों में विभाजित करता है, एक मूलभूत मानवीयता छिपी होती है और मैं समझता हूँ कि ओरछा में इस तथ्य को हम लोगों ने परस्पर अच्छी तरह समझा था। आखिर नृतत्वशास्त्र का लक्ष्य ही यही है कि मानव-जाति के वाह्य को ही नहीं, उसके भीतर छिपे मनुष्य को भी समझा जाय।

मेरे प्राध्यापक स्व० राबर्ट रेडफील्ड अक्सर कहा करते थे कि किसी पराई जीवन-पद्धति का अध्ययन दो तरह से किया जाना चाहिए। एक, वैज्ञानिक का तकनीकी और समाजशास्त्रीय विस्तृत प्रतिवेदन। दूसरा, किसी उपन्यासकार अथवा सृजनशील लेखक का चुनिंदा, सूक्ष्म तथा संवेगपूर्ण विवरण। ऐसे ही संयोग से शायद एक विशाल परिप्रेक्ष्य-युक्त तथा अधिक गहरे अर्थों वाला चित्र उभर सकता है जोकि अकेले एक दृष्टिकोण से प्रायः सम्भव नहीं हो पाता।

श्री शानी की यह रचना शायद उपन्यास नहीं, एक अत्यन्त सूक्ष्म संवेदना-युक्त सृजनात्मक विवरण है जो एक अर्थ में भले ही समाजविज्ञान न हो लेकिन दूसरे अर्थ में यह समाज-विज्ञान से आगे की रचना है। एक सृजनशील रचनाकार के रूप में घटनाओं तथा चरित्रों के निरूपण में श्री शानी की उस स्वतन्त्रता से मुझे ईर्ष्या होती है जिसका अक्सर तकनीकी विवरणों[१] में आवश्यक रूप से अभाव होता है।

श्री शानी द्वारा प्रस्तुत मानव-जाति के एक भाग का यह अध्ययन, समस्त मनुष्य-जाति को समझने की दिशा में एक योगदान है।

जोहार !

एडवर्ड जे० जे०, पी-एच० डी०
एसोसिएट प्रोफेसर ऑफ़ एन्थ्रापॉलाजी,
केलिफ़ोर्निया स्टेट कालेज, हावर्ड,
संयुक्त राज्य अमेरिका

---

१. Jay, Edward J., A Tribal Village of Middle India, Ph. D. dissertation. The University of Chicago, August, 1963.

दो शब्द

'शाल वनों का द्वीप' उपन्यास नहीं है। यात्रा-वर्णन भी इसे आप नहीं कह सकते। मध्यप्रदेश के बस्तर, बस्तर के घोर आदिजातीय भू-भाग अबूझमाड़ और अबूझमाड़ के ओरछा नामक एक छोटे-से गाँव के सामाजिक जीवन और उसके यथार्थ का यह एक कथात्मक-विवरण है। इसके माध्यम से मैंने वहाँ की विशिष्ट आदि-जाति माड़िया-गोंड़ों की जीवन-पद्धति, रीति-रिवाजों, परम्पराओं, रूढ़ियों और धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताओं के मलबे में दबी मनुष्यता की पीड़ा और उल्लास— दोनों को पहचानने की कोशिश की है।

समाज-विज्ञान अथवा नृतत्वशास्त्र से मेरा सम्बन्ध नहीं के बराबर है। मूलत: और अंतत: मैं कथाकार हूँ और वही मेरा प्रिय क्षेत्र भी है। स्वभावत: मुझे इस जीवन पर उपन्यास लिखना चाहिए था। पहिले स्वयं मैंने भी यही चाहा था लेकिन बाद में कई कारणों से यह विधा मुझे अधिक उपयुक्त लगी। किसी आदि-जातीय जीवन को उसकी समग्रता में बाँधकर, उसकी समस्याओं व विडम्ब-नाओं की तटस्थ और गहरे अर्थों वाली अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास का पारस्-परिक ढाँचा कम-से-कम मुझे बड़ी सीमाओं वाला लगता है। नागरीय जीवन और संस्कृति में पले-बढ़े किसी भी ईमानदार लेखक को शायद यही कठिनाई होगी। जिस जीवन से आप आन्तरिक या अनुभूति के स्तर पर अपरिचित हैं, उस पर पत्रकारिता भले की जा सके, उपन्यास किस तरह लिखा जा सकता है, यह आज तक मेरी समझ में नहीं आया। शायद इस वर्ग का सच्चा उपन्यास तभी लिखा जायगा जब इन्हीं में से कोई लेखक उभरकर आएगा और अपनी तथा अपने वर्ग की प्रामाणिक अनुभूतियों को आकार दे सकेगा।

सभी पिछड़ी जातियों और विशेषकर बस्तर की आदि-जातियों के सम्बन्ध में आमतौर पर एक एकांगी धारणा पाई जाती है। यह कि वे बेहद सुखी हैं, उनके जीवन में अपार उल्लास है, बेइन्तिहा संगीत है और कभी न थमने वाले नृत्य हैं। अजीब बात है कि मैंने उन्हें जहाँ तक निकट से देखा है, उसके आधार पर मेरे सामने एक और समानान्तर तस्वीर उभरती है—ऐसी जिसे पहिली तस्वीर

अपनी भावुकता या शोर-शराबे के कारण भले ही ढाँप ले लेकिन जिसमें शायद उनका अधिक मानवीय और वास्तविक चेहरा अंकित है। मुझे यह सोचकर ही हैरानी होती है कि किसी भी जाति या वर्ग का जीवन क्या चन्द रिवाजों, गीतों व विचित्रता का बोध कराने वाली मान्यताओं में ही होता है ?

बहरहाल, यह कथा-विवरण ओरछा का है, इसमें घटने वाले लोग ओरछा के हैं। यहाँ निरूपित और संकेतित वेदना, समस्याएँ व विडम्बनाएँ प्रामाणिक रूप से उसी जन-जाति की हैं। लेकिन क्या इन सबकी सीमाबन्दी ओरछा में ही हो जाती है ? क्या इन्हीं स्थितियों अथवा इनसे दस गुना अधिक जटिल परिस्थितियों में सारा अबूझमाड़ नहीं जी रहा है ? और क्या यही सब बस्तर या किसी-भी आदिवासी क्षेत्र के जीवन में नहीं घट रहा ?

—शानी

अमीरगंज, गली नं० ३,
शाहजहानाबाद,
भोपाल।

कांति
और
साधना भाभी
के लिए
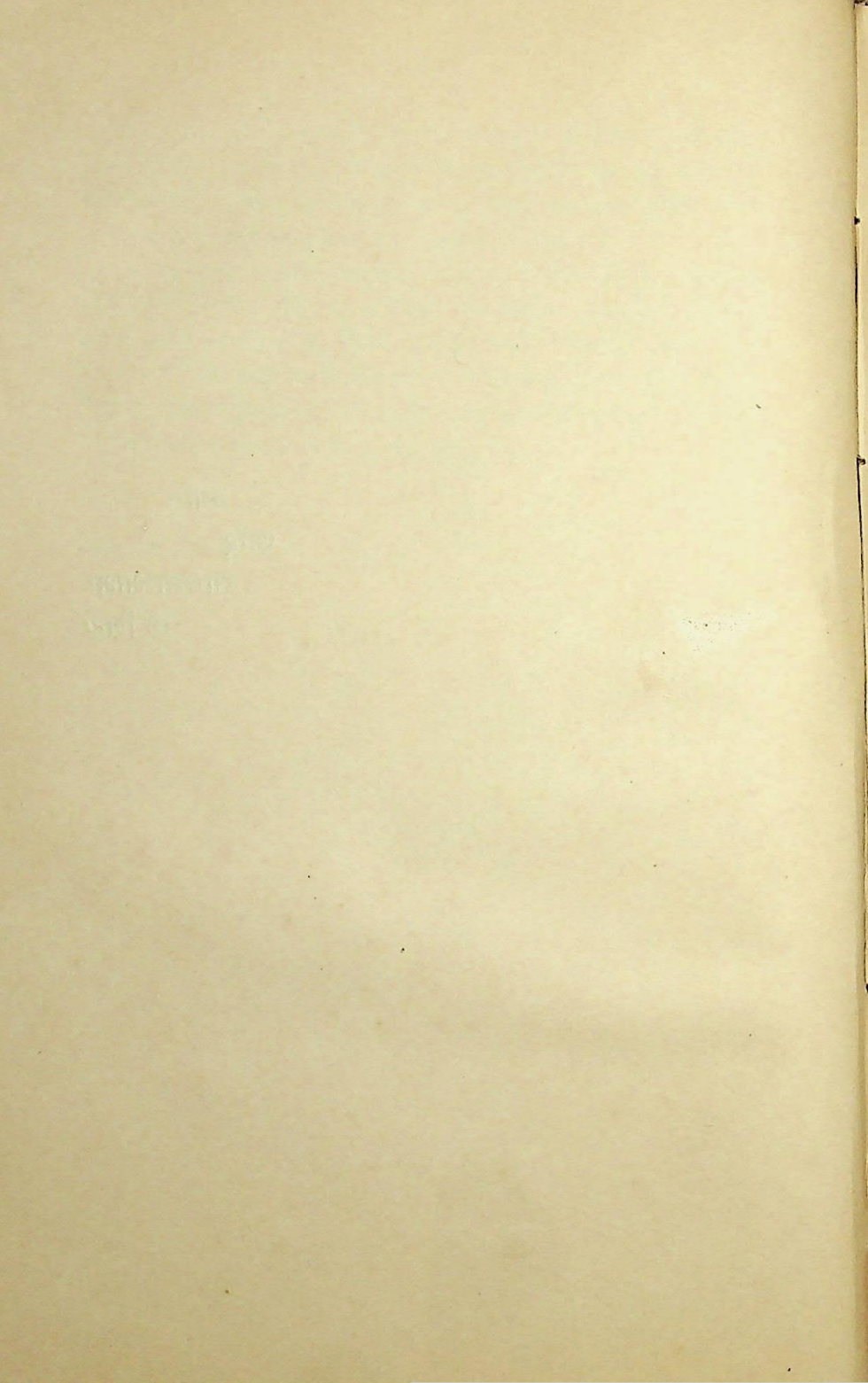
शाल वनों का द्वीप

From the forests and highlands
we come, we come.

एक

थोड़े अरसे के लिए ही सही, बसा-बसाया घर भी वीरान छोड़ दिया जाए तो कितना अपरिचित लगता है, इसका अहसास मुझे पहिली बार हुआ। जैसे ही एड ने कॉटेज का दरवाज़ा खोला। कमरे की सीलन भरी व फफुदयाई-सी गंध के साथ भीतर से गैमेक्ज़ीन पाउडर का भभका आया। एक क्षण ठिठककर नाक मलते हुए एड ने कमरे में प्रवेश किया। उसके पीछे-पीछे मैं और फिर अमरसिंह।

सारा घर अस्त-व्यस्त और गंदा पड़ा हुआ था। फ़र्श पर कई दिनों का इकट्ठा कचरा और गर्द! कॉटेज शायद हफ्ते-डेढ़-हफ्ते के लिए ही बन्द छोड़ी गई थी लेकिन उतनी छूट में घर की हुलिया बदल गई थी। लगा, उस बेरोक-टोक वीरानी में चूहों ने बेहद उत्पात मचाया है। संतरे के सूखे छिलके, बिस्कुट के खाली डिब्बे, अधजले सिगरेट और दियासलाई की जली हुई तीलियाँ—सबका जगह-बेजगह अंबार था। जैसी हालत लिविंग-रूम की थी, कमोबेश, उसी स्थिति में एड का बेडरूम भी था। घासलेट का टिन उलटा पड़ा हुआ था। मिल्क-पाउडर का डब्बा खुला व ख़ाली था। मेज़ पर की पत्र-पत्रिकाओं व पुस्तकों पर चूहों की कई-कई बैठकें हुई थीं और खाट की मसहरी बड़ी ही दयनीय-सी टँगी हुई थी।

"देखते हो, घर की क्या हालत हो गई है," सारे दृश्य को एक नज़र में भरकर खिसियानी-सी हँसी हँसते हुए एड ने कहा—"इसीलिए इतने अरसे के लिए मैं घर सूना नहीं छोड़ता।"

अमरसिंह और मैं दोनों ने बारी-बारी से एड की ओर देखा। वैसी ही हँसी के प्रयत्न हम लोगों ने भी किए और अलग-अलग खड़े हो गए। कुल दो कमरों की कॉटेज, सामने-पीछे बरामदे, एक किचन और उसी से सटाकर जीप के लिए उतारा गया कच्चा शेड। घर के वे दो कमरे ही सब कुछ थे। पहिला लिविंग, स्टोरिंग व डाइनिंग का मिला-जुला काम देता था। दूसरे में स्टडी व बेडिंग थी तथा कुछ खास-खास सामान रखे हुए थे। मसलन, टीन की बड़ी ट्रंक, फिल्मों की पेटियाँ, टाइपराइटर, मेडिसिन-बाक्स आदि।

"वह तो शुक्र है कि मेरे साथ फ़िलिस नहीं है," एड ने पीछे के आँगन की

ओर निकलते हुए कहा—"वर्ना यह सब देखकर वह आग हो जाती। तुम जानते हो न, वह यह सब बिल्कुल बरदाश्त नहीं कर पाती।"

मैं कुछ कहूँ कि पीछे के आँगन से सहसा अमरसिंह की चिचियाती-सी आवाज़ आई। मेरे पास से हटकर वह कब बाहर निकल गया था, इसका पता हम दोनों को न था।

"साहब, यह दड़बा देखिए···"

बाहर आने पर परेशान चेहरा लिए अमरसिंह ने बताया। आँगन के किनारे वाले मुर्गी के दड़बे के पास वह जैसे आश्चर्यचकित-सा खड़ा था और एकटक दड़बे की ओर घूरे जा रहा था।

"क्यों, क्या हुआ ?" कहते हुए जैसे ही एड निकट पहुँचा वह भी जैसे ठगा-सा रह गया। दड़बे का दरवाज़ा खुला हुआ था, उसके ऊपर वाला फूस का छाजन आधा उड़ चुका था और भीतर दो-एक क्षत-विक्षत मुर्गियों के शवों के अलावा उनके नुचे हुए पंख और ज़ख्मी डैने पड़े हुए थे।

यों उसके आगे समझने के लिए कुछ भी बाक़ी न था। लेकिन तब तक जीप की आवाज़ और चहल-पहल से गाँव वाले इकट्ठे हो गए थे। मालूम हुआ कि पिछली रात चीते ने दो-तीन और घरों पर धावा किया था पर आहट शोर सुनकर भाग गया। अवश्य उसके बाद सूने घर का मुर्गियों वाला दड़बा उसकी गिरफ़्त में आ गया होगा। परिणाम-स्वरूप कूद-फाँदकर व फूस की छाजन उजाड़-बिगाड़कर उसने सारी मुर्गियाँ साफ कर दीं और चिह्न-स्वरूप छोड़ गया—कुछ नुचे हुए पंख, कटे हुए डेने और एक-दो चीटियों से लिपटे शव···

"ओ हेल !" एड ने झुँझलाए हुए स्वर में कहा—"यहाँ तो अठारह-बीस में एक भी नहीं बची।"

सचमुच, एड तो जैसे भौंचक्का रह गया कि उसकी महीने की मेहनत पर चीते ने अकस्मात पानी फेर दिया। यह शौक़ ख़ास तौर पर फिलिस का था। उसी ने आग्रह करके दड़बा बनवाया था और एक-एक करके अठारह-बीस मुर्गियों की संख्या कर ली थी। जब तक वह गाँव में रही उनकी सारी देखभाल वह खुद किया करती थी। अब भी लखनऊ से हर सप्ताह आने वाले उसके पत्रों में मुर्गियों का ज़िक्र बराबर होता। यह पूछना वह कभी न भूलती कि सारी मुर्गियाँ सही-सलामत हैं अथवा नहीं। कौन-सी मुर्गी बड़ी हो गई, किसने अंडे देने शुरू किए और किसने बन्द, आदि।

"परसों मेरे घर का नया बछड़ा गया," गाँव वालों में से एक वृद्ध ने कहा—"रोज़ की तरह गोठान में अपनी माँ के पास बँधा था। मैं बदनसीब कैसी नींद सो गया कि गाय के चिल्लाने की आवाज़ तक नहीं सुनी। जागा तब, जब कि चीता उसे ले भागा था···"

"और बेचारे माहरू का कुत्ता ?" किसी ने हँसकर याद दिलाया और एड की ओर देखकर बोला—"पेपी, दुःख की बात है कि नहीं ? जहाँ बकरियाँ बँधती हैं, वह ग़रीब वहीं बैठकर रोज़ रात को भौंका करता था। चीता शायद बकरियों के फिराक़ में आता होगा। आख़िर न हुआ तो एक रात कुत्ते को भी मार ले गया···"

थोड़ी-सी हँसी के बाद चीते से सम्बन्धित अन्य अनेक छोटी-मोटी घटनाओं का उल्लेख हुआ। लगातार चौदह महीने उस गाँव में रहने के बावजूद उन सबको एड उतने ही ध्यान से सुन रहा था जितना कि मैं जो गया था और जिसने अपने जीवन में वैसे क्षण कभी नहीं देखे थे। वे सारी बातें कितनी डरावनी और रोमांचित करने वाली थीं ! लोग चीते के उत्पातों की यूँ चर्चा कर रहे थे जैसे किसी घरेलू बिगड़ैल कुत्ते की शरारतों की बातें हों। मैं सिर से पाँव तक सिहर गया—मुझे एड के साथ अबूझमाड़ में दो महीने काटने हैं और उसका पहिला दिन ही यूँ आता है कि···

"यहाँ तो सब ठीक है," अमरसिंह ने डोडी (ग्रेनरी) से नीचे उतरते हुए कहा—"ताला लगा है और भीतर अनाज भी बराबर भरा है।"

एड ने ज़रा चौंककर झुंझलाई आँखों से अमरसिंह की ओर देखा, बोला कुछ नहीं। वैसे भी ग्रेनरी की जाँच करने के लिए उसे किसी ने नहीं कहा था। अबूझमाड़ में हर घर के सामने अनाज रखने की डोडी बनी होती है। अक्सर आने पर उसे यूँही खुला छोड़कर लोग हफ्तों ग़ायब रहते हैं। लेकिन अनाज-वनाज की चोरी कभी नहीं होती। इतने अरसे तक वहाँ रहने के बाद भी एड इस तथ्य को न जानता हो, क्या यह सम्भव था ? मैं अमरसिंह की ओर देखने लगा।

उस रात बावजूद थकान के बड़ी देर तक हम लोग जागते रहे। एड ने शाम से ही बन्दूक और टार्च तैयार रखी थी कि शायद चीता फिर आए। शायद इसीलिए दड़बे से मरी हुई मुर्ग़ियाँ हटाई भी नहीं गई थीं। भीतर पेट्रोमेक्स जलाकर हम लोग बैठे थे लेकिन आँगन में ज़रा भी खटका होता तो धीरे से बन्दूक उठाकर एड दबे पाँव बाहर निकल जाता। खटकों या आहटों की ओर बन्दूक ताने बैठा रहता पर थोड़ी देर बाद निराश होकर उसे लौटना पड़ता। यह क्रम बड़ी रात तक चलता रहा लेकिन अन्त में चीते को न आना था, उस रात वह नहीं आया।

ओरछा !

तीन अक्षरों के इस नाम को दुहराते हुए आज भी मेरी आँखों के सामने नीले रूपवाली सुन्दरी माड़िन नदी आ जाती है। अबूझमाड़ में माड़िन के कई रूप

हैं—झारा घाट के पास अथवा छोटे डोंगर के उतार पर, जहाँ के अकेले वन में, ऊँची पहाड़ी जैसे माड़िन के जल में घुटनों तक पाँव डुबोए खड़ी है और तीन ओर के पथरीले घेरे के कारण उसका झील-जैसा जल नीला और पारदर्शी हो गया है। उसके आगे, जहाँ वह अचानक सामने आती हुई मानो रास्ता रोककर खड़ी हो जाती है और ओरछा गाँव के किनारे-किनारे के रेतीले तटों वाली माड़िन जिसमें टापू की तरह काली-काली चट्टानें उभरी हुई हैं—सख्त, खरदरी और सैकड़ों बरस पुरानी !

मध्य प्रदेश के दक्षिण पूर्व में लगभग १५१२७ वर्गमील के घेरे में भारत का सबसे बड़ा जिला बस्तर बसा हुआ है। यों तो अब इसे ऐसे किसी परिचय का मोहताज नहीं होना चाहिए तो भी उल्लेख के लिए इतना काफ़ी है कि इसके पश्चिम में बम्बई, पूर्व में उड़ीसा तथा दक्षिण में आन्ध्र प्रदेश हैं। सम्पूर्ण क्षेत्रफल में से २८७४ वर्गमील अथवा १९ प्रतिशत भूमि में खेती होती है तथा शेष में रक्षित अरक्षित वन, नदी-नाले, पहाड़ियाँ और आबादी है। सारे बस्तर में ११ प्रमुख बोलियाँ बोली जाती हैं। लगभग ३९ प्रतिशत लोग गोंडी बोलते हैं—इसकी भी तीन प्रमुख शाखाएँ हैं। मुरिया, मैदानी माड़िया तथा पहाड़ी माड़िया।

अबूझमाड़ की पहाड़ियाँ अधिकांशतः नारायणपुर तहसील में फैली हुई हैं। इनकी जनसंख्या लगभग ७०००० है जिसमें से १०००० लोग केवल पहाड़ी माड़िया हैं।

उत्तर बस्तर का अधिकांश भाग घने जंगलों, पहाड़ियों, नदी-नालों से घिरा हुआ है। छोटे डोंगर रक्षित वनों के ठीक दक्षिण में ओरछा गाँव बसा हुआ है—सुन्दर, रमणीक व अत्यन्त अकृत्रिम ! इसी के थोड़े पश्चिम से अबूझमाड़ की पहाड़ियाँ आरम्भ हो जाती हैं—नीली, ऊँची-नीची तथा शृंखलाबद्ध। "माड़िया गोंड्स ऑफ़ बस्तर" के प्रसिद्ध लेखक ग्रिगसन के अनुसार अबूझमाड़ की ऊँचाई २०५० से ३३२२ फुट तक है और सबसे ऊँची चोटी मंगनार परगना के पुडानार के निकट है। यों घेरे में लगभग १५०० वर्गमील तक फैली हुई हैं। जनसंख्या का घनत्व इस क्षेत्र में ६.६ व्यक्ति प्रति वर्गमील है। यद्यपि ओरछा अबूझमाड़ के पूर्वीय किनारे पर बसा हुआ है लेकिन यह स्वयं अबूझमाड़ का एक भाग है प्रमुख तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण।

उस सुबह उसी ओरछा वाली माड़िन के जल में घुटने-घुटने तक डूबे हुए हम लोग बड़ी देर से नहा रहे थे। लेकिन क्या वह नहाना सचमुच नहाने जैसा था ? कपड़े

उतरे हुए थे और सारा शरीर नंगा था। कभी रेतीले तट पर बेपरवाही से हाथ-पाँव फेंककर चुपचाप लेटे हैं, कभी किसी चट्टान पर बैठे दूर से चुपचाप वही आती माड़िन की धार को देख रहे हैं अथवा बिना बात किए चुपचाप वन का शोर सुन रहे हैं।

जनवरी के दूसरे सप्ताह तक की दोपहरी कितनी मादक हो जाती है ! धूप अत्यन्त प्यारी लगती है और पहाड़ियों से घिरी वन की हवा बेखुद तथा नशीली। मन होता है कि वहीं-कहीं निष्क्रिय बैठे समय को चुपचाप सरकते जाने दो···

ऊप्स !

सहसा एड के मुँह से यह आवाज़ निकली। दरअसल, उसके हाथ से साबुन की टिकिया फिसलकर गिर गई थी। दोनों बाहें डुबोकर वह उसे ढूँढने लगा और जल्दी-जल्दी ऐसा करने के कारण उसकी झुकी हुई पीठ धूप में और भी लाल होकर चमकने लगी।

कहाँ अमेरिका, कहाँ भारत, कहाँ बस्तर और उसमें भी कहाँ अबूझमाड़, मैंने सोचा। एड को देखकर जैसे विश्वास ही नहीं होता कि वह किसी और देश का आदमी है। इतने अपरिचित और अजनबी मुल्क में कोई इतनी दूर से आएगा और केवल माड़ियों के जीवन को निकट से देखने के लिए साल-भर ओरछा में रह जाएगा, यह मैं सोच भी नहीं सकता था।

जब पहिली बार एड-दम्पति से भेंट हुई थी तब भी मन में यही अविश्वास था। शिकागो विश्वविद्यालय का अठाइस वर्षीय अमरीकन स्कालर नवपरिणीता पत्नी सहित बस्तर के वनों में रहेगा, यह बात किताबी लगती थी। अपने अध्ययन के लिए उचित स्थान की तलाश में जब सारे बस्तर का दौरा हुआ तब भी मैं ही साथ था। दक्षिण बस्तर का गाँव-गाँव छानने के बाद आखिर उत्तर आए। नारायणपुर डाक-बंगले में ठहरकर पहिले सोनपुर-परलकोट का सारा इलाक़ा देखा और अन्त में ओरछा पहुँचे तो वही गाँव अध्ययन के लिए आखिर निश्चित हो गया।

लगभग साल भर पहिले का वह दिन अच्छी तरह याद है जब एड दम्पति के साथ मैं अबूझमाड़ आया था। जितने नए वे थे, उस जगह के लिहाज से उतना ही नया मैं भी था। वह प्रथम अवसर था जब मैंने जाना कि अजनबी देश में अपरिचित और अजानी भाषा हो तो कितनी घुटन होती है ! हमारी भाषा न वे समझें न उनकी भाषा हम, गनीमत यही हुई कि बस्तर की लिंग्वा फ्रेंका हल्बी के थोड़े-बहुत ज्ञान ने मेरी बड़ी सहायता की अन्यथा उस गाँव के पटेल और परिणाम-स्वरूप गाँव वालों से बातें करना असम्भव था ! कुछ पहिले अबूझमाड़ में बिना अनुमति के प्रवेश करना ग़ैर-कानूनी माना जाता था लेकिन अब ऐसी बात नहीं

है। वहाँ के निवासी लोग पहिले-पहल हर बाहर के आदमी को अविश्वास की दृष्टि से देखते तथा उनसे भय खाते हैं। जब हमारी जीप गाँव की थानागुड़ी के पास पहुँचकर रुकी तब भी यही हुआ था। इमली के मिले-जुले पेड़ों की घनी छाँव में खेलते कई बच्चे डर कर भाग खड़े हुए थे। औरतें दरवाजों के पीछे छिपकर देखने लगीं थीं और आदमी अपने-अपने घरों के सामने सहमे-से खड़े रह गए थे। थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे लोग इकट्ठे हुए और जब एड की योजना उनके सामने रखी गई तो एकबारगी कोई स्वीकार करने को तैयार न हुआ। सभी ने एक-दूसरे की ओर आशंकित आँखों से देखा और कई प्रश्न रखे गए थे—"ये लोग कौन हैं? कहाँ से आए हैं? इनका देश कितनी दूर है? क्या जगदलपुर से भी आगे? हमारे गाँव में क्यों रहना चाहते हैं?

कितनी देर तक उन्हें समझाना पड़ा, यह कहना कठिन है। शायद हम लोग दो बजे आए थे और शाम हो गई। उन लोगों को यह विश्वास दिला सकना कि ये विदेशी लोग उनका कोई अहित नहीं करेंगे, क्या आसान बात थी? मैं उन्हें किस तरह बताता कि वे लोग क्या काम करना चाहते हैं? आखिर यह तय हुआ कि सभी गाँव वालों की एक सभा होगी और उसमें जो निर्णय किया जाएगा, वह अन्तिम होगा। एड-दम्पति की बात तो दूर रही, स्वयं मुझे विश्वास न था कि उन लोगों का निर्णय पक्ष में होगा, पर शायद भाग्य ने साथ दिया और इस शर्त पर एड-दम्पति को वहाँ रहने की अनुमति मिली कि गाँव वालों को जरा भी असुविधा होती दिखाई दी तो उन्हें तत्काल गाँव छोड़ना पड़ेगा।

सम्भवत: स्वयं एड ने वैसे सहयोग, प्रेम, सद्भाव और आत्मीयता की अपेक्षा नहीं की थी जो उस एक वर्ष में अनायास ही उन्हें मिली। अब स्थिति यह है कि एड-दम्पति उस गाँव के अभिन्न सदस्य हो गए हैं बिल्कुल वैसे ही जैसे माड़ियों के गाँव में होता है कि हर एक व्यक्ति दूसरे से किसी न-किसी सम्बन्ध या रिश्ते से आत्मीयतापूर्वक जुड़ा है। गाँव के लोग एड को 'पेपी' कहते हैं और वह उस और दूसरे सम्बन्धों के अनुसार लोगों को आता, दादा या मामा आदि—गाँव के प्रत्येक दु:ख सुख में वह समान रूप से भागीदार है।

—"आज का क्या कार्यक्रम है?" नदी से लौटते हुए मैंने एड से पूछा।

तट के पार बाँस की पीली पड़ती झाड़ियों के बीच से एक पगडण्डी शाल वन में निकल गई है। वापस गाँव पहुँचने के लिए कुछ देर शाल वन में से होकर गुजरना पड़ता है। एक बार में एक ही व्यक्ति के चलने लायक पगडण्डी पर आगे-आगे केवल एक निकर पहने एड चल रहा था। खूब चटक धूप में उसके अभी-अभी धुले सुनहरे बाल चमक रहे थे। माड़िन पीछे छूटती जा रही थी और शाल वन में बनसुग्गे तथा मैना की मीठी किलकारियों के साथ कठफोड़वा की किट्ट-किट्ट की आवाज़ लगातार गूँज रही थी।

—"आज तो कोई खास काम नहीं," एड ने बिना लौटे मुझे जवाब दिया—"एक-दो घरों में सोशियल-काल के लिए जाना चाहूँगा। तुम्हें बताया था न कि मेरा फील्ड-वर्क क़रीब-क़रीब ख़त्म हो गया है। थोड़ा-सा बजट आदि का काम रह गया है सो उसे तुम्हारे रहते-रहते निबटा लूँगा।"

बजट यानी माड़िया परिवार की सालाना आमदनी और खर्च का ब्योरा। समाज-शास्त्रीय दृष्टिकोण से, किसी भी जाति के सामाजिक अध्ययन के लिए आर्थिक पक्ष का लेखा-जोखा चाहे जितना जरूरी हो, 'बजट' शब्द का प्रयोग माड़ियों के सन्दर्भ में मुझे बड़ा अजीब-सा लगा। जहाँ मेरे जैसे मध्यम-वर्गीय भारतीय के परिवार का ही कोई बजट नहीं, वहाँ उन अभागों का क्या बजट होगा जो कुल बालिश्त-भर का कपड़ा पहिनते हैं, कठिन परिश्रम और संघर्ष के बाद दो जून जैसे-तैसे पेज-पसिया पीते हैं और अकसर ठाँव-कुठाँव जानवरों और जंगली जानवरों से चीथे जाते हैं। पर मैं क्या कहता ? कुछ संज्ञाएँ शब्दों के अर्थ के अनुरूप नहीं होतीं। उनका काम केवल एक संस्कारगत नाम भर दे देना होता है। और माड़ियों के ही सन्दर्भ में जब हम मानवीयता की बात करते हैं तब भी उनके पीछे क्या वही संस्कारगत तथा सम्वेदनहीन सम्बोधन ही होता है ?

जनवरी की शाम। उस दिन ओरछा कितना पराया-पराया और अजनबी-सा लग रहा था। चारों ओर की कोहरा-ढँपी पहाड़ियों से उतर कर धीरे-धीरे शालवनों में दुबकता हुआ अँधेरा। उसमें आहिस्ते-आहिस्ते सनी जाती फूस की झोंपड़ियाँ, ढलवाँ मैदान से दूर तक फैली हुई भूरी घास और यहाँ-वहाँ बेतरतीबी से खड़ी बाँस की अनगिनत झाड़ियाँ। दूर के वनों से चरकर मवेशी कब के ढलवान में लौट चुके थे। इमली की छाँव में खेलते हुए बच्चों की चिल्लाहट कम हो गई थी और वनों से किसी सन्ध्या-कीट का अजीब उदास-उदास-सा शोर उभर रहा था—चिक ! चिक ! चिक ! चिक !

हम लोग पटेल के घर की बाड़ी में उसके बाहर निकलने की प्रतीक्षा करते हुए बैठे थे। अहाता खूब बड़ा था और उसमें किनारे-किनारे तीन झोंपड़ियाँ, एक डोडी और केवल एक बड़ा आँगन था। आँगन के बीचों-बीच खूब मोटे-मोटे लट्ठों वाली एक अँगीठी जल रही थी जिसे कुछ लड़कियों ने एक तरफ से घेर रखा था। दूसरी छोटी अँगीठी डोडी के नीचे जल रही थी जिसके पास कोई बुढ़िया बैठी हुई थी।

—"आओ, वहाँ अँगीठी के पास ही चलकर बैठते हैं," एड ने ठण्ड से सिहरकर एकाएक उठते हुए कहा,—"यहाँ तो शाम से ही कितनी सर्दी पड़ने लगती है !"

तभी पटेल भी आ गया और हम तीनों-चारों अँगीठी के पास बैठ गए। वहाँ पहिले से बैठी हुई लड़कियाँ उठकर दूसरी अँगीठी के पास चली गईं। एड के ग्रुप में मैं नया आदमी था। अत: पटेल कुछ पहिचानती हुई आँखों से मुझे देख रहा था। ओरछा में काम शुरू करते वक़्त के दिनों में एड ने हिन्दी अँग्रेजी दुभाषिए के रूप में जार्ज नामक एक ईसाई सज्जन को नियुक्त किया था, लेकिन अपनी आदतों के कारण वह टिक नहीं पाया। ऊबकर कुछ दिनों पहिले एड ने जार्ज को छुट्टी दे दी थी। शायद पटेल ने पहिले-पहल मुझे उसी दुभाषिए की जगह कोई नया आदमी समझा था। एड ने सालभर पहिले ओरछा में प्रथम प्रवेश का उल्लेख करते उसे मेरी याद दिलाई तो भी उसके चेहरे पर कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। बताया कि मैं मित्र हूँ और एक-दो माह एड के साथ ओरछा में ही गुज़ारने आया हूँ।

"और बाई कब तक आ रही हैं?" पटेल ने उत्सुकतापूर्वक पूछा। बाई याने एड की पत्नी फिलिस जो दो-तीन महीनों से लखनऊ गई हुई थीं। पति-पत्नी दोनों के लगभग मिलते-जुलते सपने हैं। दोनों एन्थ्रपालाजिस्ट्स—मानव-विज्ञान के विद्यार्थी है। दोनों इस विषय पर शोध करके पी-एच० डी० कर लेना चाहते हैं। अन्तर केवल इतना है कि एड की थीसिस का क्षेत्र मानव-समाज है और फिलिस लंगूरों का अध्ययन कर रही है। ओरछा में जितना कार्य सम्भावित था उसे करने के पश्चात् फिलिस लखनऊ चली गई थी। लखनऊ के आसपास कोई गाँव है व जहाँ बन्दरों-लंगूरों की धूम है। फिलिस के अध्ययन के लिए उपयुक्त स्थान।

—"अभी तो उसके लौटने में एक-दो माह और लगेंगे।" एड ने पटेल को बताया।

—"बिना घरनी के घर सूना नहीं लगता?" पटेल ने मुस्कराकर पूछा—"अब तो बहुत दिन हो गए। सभी कहते हैं कि"...कहते-कहते उसने डोडी के नीचे वाली अँगीठी के गिर्द घिरी औरतों की ओर देखा और हँसकर बोला—"कहते हैं कि अब जल्दी ही बुला लो।"

अँगीठी के पास की कुछ औरतें हँसने लगीं और वहीं बैठी किसी अधेड़-सी महिला ने गोंडी बोली में कुछ ऐसा चुभता हुआ वाक्य कहा कि एड का मुस्कराता हुआ चेहरा सहसा लाल हो आया।

—"लो, लो, बीड़ी पीयो।" हँसते-हँसते एड ने जेब से बीड़ियाँ निकालीं और पटेल की ओर देखकर यूँ बोला जैसे संकोच दूर कर रहा हो। सबों ने एक-एक बीड़ी ली—हिन्दी गोंडी के दुभाषिए अमरसिंह ने, मैंने, दो-तीन सात-सात आठ-आठ बरस के लड़कों ने, तथा स्वयं एड ने। जब पटेल का अवसर आया तो एड को छुए बिना बीड़ी लेने के लिए उसने दूर से ही हाथ फैला दिया। सम्भवत:

एड को भी इस सम्बन्ध में तब तक कुछ ज्ञान नहीं था। वह अपना हाथ बढ़ाए जा रहा था और पटेल छू जाने के भय से हाथ पीछे खींच रहा था। अन्त में अमर सिंह ने ही मुस्कुराकर स्थिति स्पष्ट कर दी कि एड को उसे नहीं छूना चाहिए। कारण पूछने पर पहिले बताया गया कि वैसा करना 'पोलो' है। बाद में पूरे विवरण मालूम हुए। पटेल की पत्नी उन दिनों चौके से 'बाहर' थी इसलिए वह तो अस्पृश्य थी ही, रिवाज के अनुसार पटेल को भी छूना इसीलिए वर्जित माना जा रहा था। प्राय: ऐसे अवसरों पर माड़िया स्त्रियाँ घर-चौके में प्रवेश नहीं करतीं। प्रत्येक माड़िया परिवार के अहाते में कम-से-कम तीन अलग-अलग झोंपड़ियाँ होती हैं—एक में चौका-चूल्हा होता है तथा परिवार का मुखिया-दम्पति सोता है, दूसरी झोंपड़ी खासकर घर की युवा तथा कुआँरी लड़कियों के सोने के लिए होती है और तीसरी झोंपड़ी ही इन अवसरों अथवा और गृह के काम आती है। अपनी परम्परा के अनुसार हर युवा स्त्री महीने में तीन दिन इसी घर के काले कमरे में जैसे कैद रहती है। लोग उसका चेहरा देखना भी पाप समझते हैं। केवल स्थित समय पर कोई-न-कोई दूर से खाना खिसका देता है और सारे समय अपने को छिपाए हुए वह वहीं बन्द रहती है।

—"पत्नी की बात और है," एड ने पटेल से कहा—लेकिन तुम्हें क्या हो गया है? क्या तुम्हें भी दूर से खाना दिया जाता है?"

पटेल ने मुस्कुराकर धीरे से सिर हिला दिया।

—"और धार्मिक काम-काज हो तो!"

—"ऐसे मौके पर किसी भी काम के लायक नहीं रहते," पटेल ने जवाब दिया"—और तो और पवित्र स्थानों में हम लोग जा भी नहीं सकते, धार्मिक काम-काज में भाग लेने की बात तो दूर की है।"

एड ने आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से मेरी ओर देखा। अमरसिंह धीरे-धीरे मुस्कुरा रहा था और डोडी के नीचे वाली अँगीठी के गिर्द आग तापती औरतें तथा युवा लड़कियाँ गर्दन फेरकर हँसी छिपा रही थीं।

दो

वहाँ से उचटकर सहसा मेरी निगाहें पहाड़ियों की ओर उठीं तो जमी की जमी रह गईं—कितना अद्‌भुत दृश्य था ! अंधेरा पूरी तरह फैल चुका था। पटेल के आँगन की अँगीठी और दूर पास की इक्की-दुक्की झोपड़ियों की टिमटिमाती रोशनी के अलावा सब कहीं स्याह-स्याह···ऐसे में उस काली पहाड़ी पर उतरते आग के सैलाब को देखकर मेरी आँखें हैरान ही रह गईं तो क्या आश्चर्य ! सच-मुच, वैसा अभूतपूर्व दृश्य मैंने जीवन में कभी नहींदे खा था। पहाड़ी पर एक जगह कई-कई आग के दरिये बहे आ रहे थे और धीरे-धीरे उनका फैलाव बढ़ता जा रहा था। वहाँ कई रेखाएँ थीं और कई आकृतियाँ। लग रहा था जैसे असंख्य मशालें लिए कोई फ़ौज पहाड़ी से लगातार नीचे उतरती आ रही हो और उसी की शाखाएँ-प्रशाखाएँ इधर-उधर फूट निकली हों। एक सिलसिला है, जो खत्म ही नहीं होता।

—"जंगल जल रहा है !" एड ने मुझे उस ओर आश्चर्यभरी आँखों से ताकते देखकर बताया। जैसे उस एक पंक्ति से मेरी आशंका दूर कर बता देना चाहता हो कि वह आग का सैलाब क्या है।

—"कैसे ?" मैंने उसी स्वर में पूछा—"क्या अचानक आग लग गई है ?" अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने दावानल की बात सुनी थी। सुना था कि जंगल में अकस्मात भी आग लग जाए तो तुरन्त दूर-दूर तक फैल जाती है।

—"अचानक नहीं, हम लोगों में से किसी ने लगाई होगी।" मेरे प्रश्न का उत्तर पटेल ने अपने आप दिया—"पेंडा के खेत तैयार हो रहे हैं क्योंकि अब कुछ अरसे बाद कुटकी बोनी शुरू हो जाएगी।"

कुछ समझते और कुछ न समझते हुए मैं चुप हो गया। पटेल से कुछ कहना व्यर्थ है। यों भी पेंडा खेत की तैयारी की सूचना के साथ मुझे सब समझ जाना चाहिए था। अबूझमाड़ के पहाड़ी माड़ियों में खेती करने की वही आदिम और पुरानी प्रणाली है। उनके यहाँ धान के खेत नहीं के बराबर हैं। लोग कुटकी या कोल्हा नुका खाते हैं और उसकी उपज के प्रयत्न बहुत सीधे-सादे हैं।

पहाड़ी के किसी ढलवानवाले भरे-पूरे नए शालवन में आग लगा दी जाती है। जब उस जगह का जंगल जल कर खाक हो जाता है, ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के लम्बे तनों के बदले केवल छोटे-छोटे भुने हुए ठूँठ रह जाते हैं और सूखे पत्तों के अम्बार से ढँकी हुई ज़मीन पर केवल राख उड़ने लगती है तब वहाँ की मिट्टी खोदी जाती है। वहाँ हल-बक्खर का भी कोई गुजर नहीं सिर्फ कुदाली या फावड़े से थोड़ी-थोड़ी मिट्टी उलट-पुलट ली जाती है और कुटकी और दाल के बीज छिड़क दिए जाते हैं—मोटे तौर पर पेंडा खेत का काम यहीं समाप्त हो जाता है। जब फसल पकने पर आती है, बच्चों को छोड़कर सारा परिवार अपने-अपने पेंडा खेतों पर जाकर अनाज काट लाता है। बाज़ छोटे परिवार वाले लोग पहाड़ी के नीचे वाला अपना घर छोड़कर ऊपर खेत में ही चले जाते हैं। वहीं खेतों के बीच छोटी-सी टपरिया बना ली जाती है जिनके नीचे फसल कटने तक दिन-रात रहकर सारा परिवार अपने खेतों की रखवाली करता है। घने जंगल और विशेषकर पहाड़ी में हिरन, चीतल साँभर या खरगोश आदि जानवरों से खेत की सुरक्षा क्या साधारण बात है?

सहसा बाड़ी के प्रदेश द्वार के पास एड ने टार्च की रोशनी फिर लौटी। एकाध मिनट पहिले उठकर वह बाहर चला गया था। अमरसिंह अपनी जगह जमा हुआ था—पूरी तरह मुस्तैद। बाहर कोहरा पड़ रहा था। अँगीठी का बड़ा लट्ठा जलकर थोड़ा पीछे सरक गया था और उस पर ढेर राख पड़ गई थी। पटेल तब भी अनथका उकड़ूँ बैठा पत्ते की चोंगी पी रहा था। अलबत्ता डोडी के नीचे की एक-दो लड़कियाँ सर्दी के मारे लुढ़ककर अँगीठी के पास हो गई थीं और बुढ़िया बेतरह ऊँघ रही थीं।

—"इट्स आफुली कोल्ड, नो?"

कहकर ज़ोर-ज़ोर से अपनी हथेलियाँ रगड़ता हुआ एड लौटा और सिहरता हुआ अँगीठी के पास बैठ गया। अमरसिंह ने अपने साथ लाई हुई थैली सामने कर दी और एक की ओर देखकर इशारे से कुछ पूछा। क्षण भर बाद खाली थैली एक ओर कर दी गई और शराब की दो बोतलें निकालकर अमरसिंह ने सामने धर दीं।

अवश्य पटेल की आँखों में चमक पैदा हो गई होगी जिसे अँधेरे के कारण मैं नहीं देख सका। थोड़े से शाल पत्ते खींचकर वह शराब पीने के लिए छोटे-छोटे प्याले बनाने लगा।

—"तुम्हारे पेंडा के कितने खेत हैं?" मैंने इस बार सीधे पटेल से पूछा।

—"दो-तीन हैं।"

—"और धान के?"

—"आठ-दस।"

—"इतने चावल का क्या करते हो ? मैंने कहा—"तुम लोगों के यहाँ तो ज्यादा कुटकी खाई जाती है न ?"

—"लेकिन पेंडा के इतने खेत कहाँ से लाएँ ? पटेल ने एड की ओर देखकर कहा—"आसपास की सारी पहाड़ियाँ बेकार हो रही हैं। ऐसा ही रहा तो यह गाँव कुछ वर्षों में उजड़ जाएगा।"

पटेल की बात में न आवेश था न अतिशयोक्ति। अमूमन माड़िया परिवार किसी एक गाँव में तीन-चार बरस से ज्यादा टिककर नहीं रहता। उनका सारा जीवन केवल भटकाव में बीतता है। जहाँ पहाड़ी देखी, वन देखा, जला डाला। उसी की तराई में दो-चार झोपड़ियाँ लगा लीं और रहने लगे। साधारणतः एक पेंडा खेत तीन बरसों बाद उपज देना बन्द कर देता है और परिणामस्वरूप वह गाँव उजड़कर किसी और पहाड़ी के नीचे बस जाता है।

लेकिन ओरछा धीरे-धीरे करके दूसरी तरह का गाँव होता जा रहा है। अव्वल तो वह अबूझमाड़ का सबसे बड़ी आबादी वाला गाँव है और कमोबेश, माड़ के प्रवेश द्वार पर पड़ता है। बरसात के चार-छह महीने छोड़कर बाकी दिनों में वहाँ तक जीप आ-जा सकती है। स्कूल हाल में खुला है और नहीं तो वन विभाग वाले तो हैं ही। बहरहाल, ओरछा अबूझमाड़ का होते हुए भी जैसे उसे कई मानों में अलग जा पड़ता है। वहाँ एक वंश या गोत्र नहीं, कई-कई गोत्र व जातियों के लोग रहते हैं। पर्याप्त संख्या में गाय बैल पाले गए हैं। हल बक्खर जलते हैं और मैदानी खेतों में धान की उपज काफी होती है। अबूझमाड़ के बेशतर गाँवों का यह हाल है कि किसी पहाड़ी के नीचे आज जो गाँव बसा नजर आ रहा है तीन-चार बरस बाद देखें तो वहाँ जंगल ने झाड़ पूर दिए हैं और लोग उजड़कर गाँव के नाम समेत कहीं और बस गए हैं। यह उजड़ने व बसने का सिलसिला सदियों पुराना है और ऐसे ही चल रहा है।

—"सुना है कि यह डाही खेती सरकार क़ानूनन बन्द करने जा रही है," पटेल को सुनाते हुए मैंने एड से कहा।

—"क्यों ?"

—"ख्याल है कि इससे काफी जंगल बरबाद होते जा रहे हैं।"

—"डाही खेती क्या ?" पटेल ने पूछा।

—"यही जो तुम लोग जंगल जलाकर करते हो।"

पटेल जैसे मेरी नासमझी की बात पर हँसने लगा। बोला—"सरकार कैसे बन्द कर सकती है ?"

—"क्यों, जब कानून ही बन जाय तो क्या करोगे ?"

—"यहाँ मानेगा कौन ?" पटेल ने मुस्कराकर कहा—"वही तो हमारा

खाना-पीना है। चावल से तो पेट भरता ही नहीं। हाँ तीज-त्यौहार की बात और है।"

कानून न मानने की बात जैसी दृढ़ता से पटेल ने कही उससे चकित होकर मैं एड की ओर देखने लगा। डाही खेती सदियों पुरानी उनकी परम्परा है। जिसे एकाएक तोड़कर बदल देना आसान नहीं। सचमुच, क्या होगा यदि ऐसा कानून ही बन जाय ? क्या किसी सामूहिक विरोध की सम्भावना हो सकती है ? क्या यह हो सकता है कि···

अचानक सारे वातावरण में महुए की शराब की तेज गंध फैल गई— अमरसिंह बोतल से शराब निकालकर पत्ते के प्यालों में डाल रहा था। सिवाय मेरे सभी ने एक-एक प्याला सम्हाला। डोडी के नीचे वाली एक-दो महिलाएँ भी आईं और शराबनोशी में शामिल हो गईं। खुद एड भी अपने प्याले का हिस्सा ग़टग़ट पी गया। महुए की शराब उससे पी नहीं जाती, यह शिकायत उसने कई बार की थी लेकिन मैंने देखा कि पीने के दौरान उसके चेहरे पर एक शिकन तक नहीं आई। जिस समाज को जानना है, नृतत्वशास्त्री के लिए उसका एक अंग बनकर चलना ज़रूरी है। इसमें कई चीजें समाज के मन की करनी पड़ती हैं। भले ही जी में उसके लिए नफरत हो। अब यही दम-पे-दम बीड़ियाँ फूँकना या सबके साथ मिलकर महुए की तेज दुर्गन्ध वाली शराब पीना, क्या एड के मन की बात हो सकती है ?

जब शराब बट रही थी, उस समय पटेल ख़ामोश था। पर थोड़ी देर बाद वह बहकने लगा। कई तरह की बातें उसने शुरू कर दीं जिनमें सबसे प्रमुख बात आपत्तिस्वरूप यह थी कि मैंने शराब क्यों नहीं ली ? क्या शराब पीना बुरी बात है ? क्या ऐसे लोग खराब होते हैं ? और जो वे लोग पीते हैं, इसलिए क्या सच-मुच बुरे हो गए हैं ? कुछ बहकते और कुछ न बहकते हुए एड ने समझाया कि उसमें खराबी की तो कोई बात नहीं, केवल अपनी-अपनी रुचि का प्रश्न है।

उस समय मैं यह सोच रहा था कि इन माड़ियों के गाँवों में कल अगर मद्य निषेध हो जाय तो ये लोग क्या करेंगे ? क्या ऐसा कोई भी कानून वहाँ प्रवेश पा सकता है ? जिससे इनका एकमात्र मनोरंजन शराब ही हो, जिनके यहाँ शराब के बिना हर सामाजिक व धार्मिक उत्सव अधूरा हो उनके जीवन से शराब को एकाएक खींच लेना क्या साधारण घटना होगी।

वही परिन्दा, वही आवाज और वही शालवन, केवल समय के भेद से आवाज़ के प्रभाव में कितना अन्तर आ गया था। दोपहर को छूती सुबह के वातावरण में पंडकी का वही चिर-परिचित स्वर गूंज रहा था पर अजीब बात है कि उस समय

वह आवाज़ किलकारी-सी आती थी। यही स्वर भरी दोपहरी के सन्नाटे में एक अजब-सी वीरानगी पैदा करता है। आज शाम को इसी आवाज़ से एक जकड़ती हुई उदासी-सी महसूस होती है, और अब ?

"अब ?" मैं बाहर ही ठिठककर एड के निकट आने की प्रतीक्षा करने लगा। ज़ाहिरा तौर पर मैं इन्तजार कर रहा था लेकिन वैसे शायद यही सोच रहा था कि वहाँ प्रमुख कौन है पंडकी की आवाज़ या वह समय जो हमें चारों ओर से घेरे हुए था ?

"—केये घर पर है ?" पूछता हुआ एड मेरे नजदीक आया पर मेरे जवाब की प्रतीक्षा किए बिना स्वयं ही बाड़ी के दरवाजे तक चला गया। थोड़ी देर बाद वहीं से मेरी ओर देखकर उसने आवाज़ दी—"आ जाओ, हैं·· सभी हैं।"

जिस परिवार का बजट लेने हम लोग आए थे, देखा उसका मुखिया केये आँगन में ही बैठा चटाई बुन रहा है। अकस्मात हम लोगों को अपनी दहलीज पर देखकर भी उसके चेहरे के भावों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। बहुत हल्के-से मुस्कुराकर पहिले उसने अपने हाथ रोक दिए फिर बैठने के लिए पुरानी चटाई सरकाकर उसी तरह अपने काम में जुट गया।

"—जोहार।" निहायत अनौपचारिक ढंग से बैठते हुए एड ने कहा।

उसी का अनुसरण करते हुए अमरसिंह और मैं आकर चटाई के एक-एक कोने में बैठ गए। संभवत: हम लोगों की सुविधा का ही ख्याल रखते हुए केये ने भीतर की ओर आवाज़ दी—

—"रेको, बेटी एकाध चटाई और दे जा।"

वैसे हम लोग पूरी सुविधापूर्वक बैठे थे अतः मना करते रहने पर भी चटाई आखिर आई ही, चटाई लेकर बाहर आते हुए क्षण भर जो शरीर दहलीज की ओट ठिठक गया था उसकी ओर मेरा ध्यान भी गया था। उस एक उचटती हुई दृष्टि में मैंने देखा था कि केये की बिटिया रेको एकाएक सामने आने में झिझक रही है। फिर जब चटाई लेकर वह आ ही खड़ी हुई तो सहसा यह मानना कठिन हो गया कि रेको कुआँरी तथा अनब्याही युवती है। वह तो मुझे अपने ढलवान पर खड़ी एक ऐसी औरत लगी, जो संयोगवश ही अनब्याही रह गई है। ऊपर नाभि से लेकर गले तक और नीचे आधी जंघा से लेकर टखनों तक पूरी खुली। बीच कमर में कपड़े का एक छोटा-सा टुकड़ा और बस। कुआँरी लड़की का रूप क्या ऐसा ही होता है ? एक नजर में मैं सिर से पाँव तक उसे देख गया—कम-से-कम ३१-३२ की उम्र, फल दे चुके केले के पेड़-जैसा उतरा-उतरा व ढीला जिस्म, गले में बहुत-थोड़े-से माला मूँगों के हार, मैले रंग वाला कांतिहीन चेहरा जो गुदने के निशानों से भरा था और ऐसी आँखें जिन्हें देखकर बेसाख्ता तालाब तट के छोटे-छोटे गड्ढों की याद आ जाए।

—"जोहार पेपी ।" चटाई डालने के लिए झुकते हुए उसने एड की ओर देखा और मुस्करा कर बोली । जवाब देकर एड भी स्नेहपूर्वक मुस्कुराया । फिर अमरसिंह से हँसकर गोंडी में कुछ कहती हुई रेको चली गई तभी शायद वातावरण कुछ मुक्त हुआ ।

पिछली रात रेको के बारे में बड़ी देर तक हम लोगों में बातें होती रहीं । जब तक फिलिस गाँव में थी रेको प्रायः रोज आकर एड के यहाँ बैठ जाया करती थी—बिल्कुल एक सहेली या परिवार की सदस्या की तरह । संभवतः आत्मीयता के उसी सूत्र ने फिलिस के माध्यम से एड को कहीं जोड़ रखा है । रेको के सम्बन्ध में बातें करते हुए वह उसकी परिस्थितियों के साथ कितना घुला-मिला लगता है ।

—"क्या तुम भाग्य पर विश्वास रखते हो ?"

रात, एड के इस आकस्मिक प्रश्न से मैं बेतरह चौंका था । पटेल के यहाँ से लौटने के बाद उसने मेरे साथ थोड़ी सलपी पी ली थी अतः मुझे लगा कि वह बहक रहा है । पर शायद वह बात न थी । पूरे होशो-हवास के साथ अत्यंत सहज और स्वाभाविक स्वर में उसने कहा था—"पहले कोई भाग्य-वाग्य की बात करता तो मुझे भी हँसी आती थी लेकिन अब चुप रह जाता हूँ । सोचता हूँ कि वह कौन सी शक्ति है जो मुझे अनायास अमरीका से भारत धकेल लाई है । यहाँ सचमुच एक दिन आ सकूँगा, यह मैंने कब सोचा था । और मान लो, कल यहाँ अचानक मेरी मौत हो जाए और अपने देश से हज़ारों मील दूर इस बियाबान जंगल में दफन होना पड़े तो इसे कौन-सा नाम दोगे ?"

मैं आशंकावश एकाएक सिहरकर रह गया । क्या सचमुच यह किसी के साथ भी हो सकता है ? मेरे साथ भी ? किसी बिल्कुल अजनबी देश में अपने-परायों से दूर, अपरिचित लोगों के बीच मर जाने का दुख कैसा होता होगा ?

—"यह लड़की कितनी बदकिस्मत है, एड ने बिल्कुल भावुकता में भरकर कहा था—"सोचो तो मन करुणा से भर जाता है । मैं अगर इसे नज़दीक से न जानता तो शायद कभी विश्वास न करता कि गरीबी आदमी को इस हद तक विवश कर सकती है । अबूझमाड़ की माड़िया युवती को तीस-बत्तीस उम्र तक पति न मिले, कैसी अजीब बात है !"

और उसके दुर्भाग्य की जो कहानी उसने बताई उसका सारांश यह था कि रेको अपने यौवन के आरम्भिक दिनों में ऐसी संजीदा, उदास और खामोश मिजाज़ लड़की नहीं थी । गाँव की अन्य युवा लड़कियों की तरह पत्ते तोड़ने या कंद-मूल खोदने वह भी जंगल जाती थी, प्रायः प्रत्येक रात घोटुल के नृत्यों में भाग लेती थी और कई काकसार के उत्सव निहायत उत्साहपूर्वक उसने गुजारे थे । शायद यह भाग्य ही था जिसने निश्चित जीवन-संगी प्राप्त करने के उसके सारे

प्रयत्न विफल कर दिये। अन्यथा तब एक के बाद एक ऐसी अनेक बाधाएँ उसके ब्याह में क्यों आ खड़ी होतीं ?

—"और अब क्या हो गया है ?" मैंने पूछा।

—"क्यों ?" एड ने साश्चर्य कहा—"क्या आदमी अपनी गई हुई उम्र को लौटा सकता है ? पहले कुछ बरस शायद एक उम्मीद से बँधी वह घोटुल तथा काकसारों में भाग लेती थी लेकिन बाद में ऐसी हर जगह जाना उसने बंद कर दिया। अब स्थिति यह है कि ब्याह करना भी चाहे तो वह नहीं कर सकती। बाप बूढ़ा है और भाई तपेदिक का मरीज़। यहाँ के संघर्षमय जीवन के लिए जो शारीरिक शक्ति चाहिए, उस लिहाज़ से दोनों बेकार हैं अतः अपनी मिहनत और ईमानदारी से अकेले रेको ने ही सारे घर को सँभाल रखा है। बताओ अब ब्याह करके उसके चले जाने का मतलब क्या बाप-भाई की मौत नहीं होगी ?

शायद मन ही मन मैं यह निर्णय कर रहा था कि मुझे क्या कहना चाहिए, इसीलिए चुप था। जब ब्याह की सुविधा थी तो रेको की राह में बाधा अड़ी थी, अब कोई बाधा नहीं है तो एक दुविधा खड़ी है जो उसे छूटने नहीं देती। यदि भाग्य इसी को कहते हैं तो इस संकट का अंत कहाँ है ? क्या रेको सचमुच बदकिस्मत है ? क्या उसका सारा जीवन बाप-भाई के बीमार आँगन में इसी तरह चुपचाप बीत जाएगा ? और फिर उसके बाद ?···

बजट !

मैंने मन ही मन इस शब्द को एक बार दुहरा लिया। अवश्य यह ही पूर्वग्रह है कि अंग्रेजी के इस शब्द का उच्चारण करते या सुनते ही मेरी आँखों के सामने सैकड़ों हज़ारों की संख्यायें खड़ी हो जाती हैं अथवा वे परिवार झूलने लगते हैं जहाँ की दीवारें सुख-समृद्धि से घिरी हुई हैं।

एड ने दुबारा बीड़ियाँ निकालकर सबको बाँट दी थीं और नोटबुक तथा पेन लेकर तैयार हो गया था। पहिले मुझसे, मेरे माध्यम से अमरसिंह से तथा फिर केये से प्रश्न हुआ—"अच्छा, साल भर में कुल कितनी आमदनी हो जाती है ?"

केये भौंचक्का-सा थोड़ी देर ताकता रहा फिर हँसकर बोला—"क्या आमदनी बताऊँ ? यह घर है और तुम्हारे सामने ये हम लोग बैठे हैं। जिस तरह की ज़िन्दगी चल रही है देख ही रहे हो। ऐसे में कहाँ की आमदनी और कहाँ का खर्च ?"

—"फिर भी," अमरसिंह ने समझाया—"आखिर जैसे-तैसे ज़िन्दा रहने के लिए कुछ तो आता ही है। उसी का विवरण अंदाज़ से बता दो।"

केये कई क्षण तक विवश और करुण-सी हँसी हँसता रहा। फिर उसने

भीतर वाले दरवाज़े की ओर संभवतः रेको के लिए देखा। बाद में रुक-रुककर उसने जो विवरण दिए, वे कुछ इस प्रकार थे—

सौ दुर्भाग्यों में एक यह है कि उनके पास अपनी खुद की जमीन या खेत नहीं। जिनके खेत खाली होते हैं, उन्हीं में थोड़ा-बहुत अनाज वे लोग बो लेते हैं लेकिन वह भी बस नहीं होता। न हल-बक्खर, न बैल, न खेत और न पैसा। यहाँ तक कि अच्छे स्वास्थ्य वाले दो पुरुष हाथ भी नहीं। ऐसे में क्या खेती-किसानी और क्या पैदावार। ले-देकर एक रेको का सहारा है जो अकेली जान सब करती है लेकिन कुछ भी हो वह आखिर औरत-जात ही है। कहाँ तक क्या करेगी? पहाड़ी पर अवश्य किसी का अधिकार नहीं लेकिन पेंड़ा खेत के लिए जितनी मेहनत चाहिए, वह करनेवाला कौन है? लिहाज़ा उससे भी पेट नहीं भरता तो यह बुनने-गाथने का काम करने लगते हैं। बाँस की चटाई, टोकनी, सूप और झाड़ू आदि जिन्हें समय-समय पर बाज़ार ले जाकर स्वयं रेको ही बेच लाती है।

मेरी आँखें घर की ओलती तथा आँगन के कोने-अँतरों की ओर गईं। वहाँ सब कहीं बाँस की बनी चीजों का जैसा अम्बार फैला हुआ था, उससे मुझे यह बात पहिले ही समझ लेनी चाहिए थी लेकिन मैंने ध्यान नहीं दिया था। फिर स्वभाव के अनुसार ही मेरे मन में आया कि खेती-किसानी का चक्कर छोड़ यदि बाँस की यही चीजें बड़े पैमाने पर बनाई जाँय तो भी केये का परिवार क्या ऐसे ही गरीब रहेगा?

सहसा एड ने पूछा—"और भला, इससे कितनी आमदनी हो जाती है?"

इससे पहिले कि केये कुछ कहता स्वयं अमरसिंह ने उसके विषय में विस्तार से बताया। बाँस की कमी नहीं, चारों ओर उसी का जंगल है। यों मेहनत भी खास नहीं लगती, छील-छालकर चुपचाप बुनते जाने का काम है लेकिन खाली समय में घर के तीनों लोग भी काम करें तो चार-छह आने से अधिक का काम दिन भर में नहीं होता। वैसी स्थिति में उससे साल भर यदि केवल चार-पांच रुपये ही कठिनाई से आते हों तो क्या आश्चर्य?

मेरा सारा उत्साह ठंडा हो गया। साल में बारह महीने और उन महीनों में इतने-इतने दिन पर कमाई के नाम पर इतने लम्बे अरसे में सिर्फ चार-पाँच रुपए। मुझे लगा कि शरीर के रोंगटे खड़े हो रहे हैं। क्या अबूझमाड़ में रुपये का मूल्य इतना अधिक है?

—"क्यों?" लिखते-लिखते सिर उठाकर एड ने पूछा—"क्या बिक्री नहीं होती या"...

—"होती है," केये ने बेपरवाही से कहा—"लेकिन कोई भी चीज घर बैठे तो बिकेगी नहीं, उसके लिए भी तो बाज़ार जाना पड़ता है और तुम तो जानते हो बाजार जाना हम लोगों के लिए कितना मुश्किल है।"

उसके आगे हालाँकि किसी ने कुछ नहीं कहा और सिर झुकाकर एड भी चुपचाप नोट्स बनाने लगा पर मुझे लगा जैसे हमारे आसपास का वातावरण यक-बयक भारी हो गया है !

अबूझमाड़ के इतने बड़े क्षेत्र के लिए हफ़्ते में केवल एक बाज़ार लगता है ओरछा से अठारह-बीस मील दूर धवड़ई नामक जगह में। लोग अकेले-दुकेले नहीं जा पाते, झुण्ड के झुण्ड तैयारी करते हैं और दो-तीन दिनों पहिले के निश्चित कार्यक्रम के अनुसार निकलते हैं। जिस उत्साह और गम्भीरता से बाज़ार की तैयारी होती है उसे देखकर लगता है जैसे किसी मेले में जा रहे हों। वैसे केवल शगल के के लिए जाने वालों में युवक-युवतियों की प्रमुखता होती है। इस अवस्था के कई आकर्षण हैं—एक झुण्ड में साथ-साथ दूर तक सफ़र करने का मोह; गीत, गले और उन्मुक्त स्वच्छन्दता। बाजार के छाँव-छाँव में लगे हुए माला-मूँगों के ढेर, चूड़ियाँ, गिलट के ज़ेवर, अल्मूनियम या पीतल की अँगूठियाँ अथवा साबुन। एक झुण्ड उन अरसिकों, प्रौढ़ों व उम्र पार करके लोगों का होता है जो सिर अथवा कंधे पर बोझ लादे, किसी आशा से बँधे-बँधे मीलों का फासला तय करते हैं और तब कहीं बाज़ार आता है। मेरी आँखों के आगे कई आकृतियाँ सजीव हो गईं। मैंने नहीं देखा लेकिन एड की आँखों से देखता हूँ कि ओरछा से भी कई-कई मील दूर, अबूझमाड़ के भीतरी इलाके से दो या तीन लोगों का एक समूह बाज़ार आ रहा है। पुरुषों के कंधे पर कावड़ है और औरतों के सिर पर भारी-भारी टोकनियाँ। चेहरों पर थकान और धूल के चिन्ह हैं और भाराक्रांत पाँव धीरे-धीरे पहाड़ी के नीचे उतर रहे हैं···मुझे एकाएक विश्वास नहीं होता कि अबूझमाड़ के कुछ लोग बाजार के लिए चालीस-चालीस मील का फासला लाँघकर आते हैं···

केये अपनी बूढ़ी तथा धुआँ-धुआँ आँखों से मेरी ओर देख रहा था, अतः मैंने दूसरी ओर मुँह कर लिया। मुझे आशंका हो रही थी कि किसी भी क्षण मैं घिर जाऊँगा। लग रहा था जैसे उससे आँखें मिलते ही वह अचानक पूछ बैठेगा—

—"अच्छा साब, सरकार हम लोगों के लिए कुछ और बाजारों का इंत-जाम क्यों नहीं करवाती ? क्या यह नहीं हो सकता कि अबूझमाड़ के कई गाँवों में बाजार भरें ? अपने जीते-जी क्या मैं वह दिन नहीं देख सकता जब बच्चे, जवान बूढ़े, हर किसी की पहुँच में यह बाज़ार आ जाए ?

और तब मैं उसे किस तरह समझाता कि अभी छँटाक भर नमक के लिए चालीस-चालीस मील उन्हें चलना ही पड़ेगा क्योंकि यही उनका भाग्य है ?

तीन

जहाँ पर एड की कॉटेज खड़ी थी, वह खुले मैदान का अपेक्षाकृत ऊँचा हिस्सा था—जैसे समतल भूमि वाला छोटा और रहस्यमय-सा टीला हो। गाँव की आबादी का एक भाग होते हुए भी वह कॉटेज यूँ अलग-अलग दिखाई देती थी मानो गाँव से अधिक वह शाल वन तथा उससे भी अधिक पहाड़ियों से सम्बद्ध हो। पश्चिमी अहाते को छूती हुई जो पगडण्डी नदी की ओर निकल गई थी, उसके गज़-दो-गज़ चौड़े टुकड़े को छोड़कर दस-पाँच फुट छोटी घास वाली खाली जमीन पड़ी थी। ठीक उसके बाद शाल वृक्षों का घना जंगल शुरू हो जाता था।

यों गाँव की वास्तविक आवादी कॉटेज के पीछे पूर्व की ओर थी। पिछली बाड़ी से लगा हुआ एक ढलवाँ मैदान था जिस पर उतरते व चलते चले जाने पर एक-एक करके कुछ आबाद झोंपड़ियाँ मिलती थीं। बरअक्स इसके, इधर प्राय: एकान्त और सन्नाटा रहता था। पड़ोस के घेरे में तीन परिवार आते थे—नदी की ओर वाला लस्के का घर, पीछे केये का मकान और दाहिने हाथ की ओर मासा का परवार। इनमें एड के सबसे निकटतम पड़ोसी मासा लोग ही थे।

आज जब कि मैं ओरछा से इतनी दूर निकल आया हूँ और बीच में लम्बे-लम्बे दो वर्ष गुजर गए हैं, कई छोटी-बड़ी स्मृतियाँ होंगी जिन्होंने मेरा साथ छोड़ दिया है। शायद कोई होंगी जो अस्पष्ट और धुँधली हो गई हैं। लोगों में कुछ के नाम याद रह गए हैं, कुछ की हँसी और कुछ की अधूरी-अधूरी-सी रेखाएँ। लगता है, अनेक अलग-अलग तस्वीरों व खण्ड चित्रों के अम्बार में कई चेहरे हैं जो या तो दब गए हैं अथवा सब-के-सब एक ही नज़र होने के कारण आपस में गडमड हो गए हैं। पर इनमें निश्चय ही मासा को आज मैं ज्यों-का त्यों अपनी नज़रों के सामने खड़ा कर सकता हूँ।

पहिले-पहल मैंने उसे तब देखा जब एड को ओरछा में रहते हुए साल पूरा हो रहा था और मासा उन लोगों का सबसे अधिक विश्वासपात्र तथा अपना बन चुका था। यदि मैं भी उसी गाँव का एक निवासी होता तो उसके सम्मान, अधिकारों व सहूलियतों को देखकर अवश्य मासा से ईर्ष्या करने लगता। उसके रहन-

सहन, रख-रखाव, पहनाव उढ़ाव व बातचीत में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो चुका था। प्राय: माड़िया तरुणों की तरह छोटी-सी धोती (जिसे धोती नहीं ही कहनी चाहिए) वह भी पहिनता लेकिन जिस्म का ऊपरी हिस्सा एक साफ-सुथरे शलूके से बराबर ढँका होता—इसके अलावा सिर पर सफेद चौड़ी और ऊँची पगड़ी, गले में लाल रंग की छोटी-बड़ी कई मालाएँ, कलाई में अल्मूनियम के मोटे-मोटे कड़े और कानों में छोटी-छोटी पीतल की बालियाँ। निश्चय ही उसे मैंने उसके मूल रूप में नहीं देखा जब वह पहिले-पहल एड दम्पति के सम्पर्क में आया होगा। अब तो जैसे विश्वास ही नहीं होता कि कभी यह मैले कपड़े और गन्दे शरीर वाला, दुबला-पतला, सहमा-सहमा व मरियल-सा लड़का होगा—कुछ उन्हीं नंगे बच्चों में से एक जो आज भी कॉटेज में के बरामदे या आँगन में सुबह-सुबह आ जमते हैं और घन्टों अकारण बैठे, एड के मुँह की ओर ताकते हुए कुछ-न-कुछ प्रतीक्षा किया करते हैं।

सुबह के उनींदेपन में अथवा नींद खुलने पर मुझे सबसे पहिले मासा की आवाज सुनाई देती। न जाने कितनी सुबह उठकर, अपने लायक घर के काम-काज निबटा कर वह हमारे यहाँ आ जाता और कॉटेज के बरामदे अथवा आँगन में बैठा एड की प्रतीक्षा करता रहता। मेरा कमरा अपेक्षाकृत बरामदे के अधिक निकट था अत: खाट पर लेटे-लेटे ही बाहर की सारी बातें सुनी जा सकती थीं। नित्य की सुबह कॉटेज के बाहर तीन प्रकार के लोगों का जमघट लग जाता—एक समूह पाँच-आठ साल के बच्चों का, जो बेपरवाही से बरामदे में बैठा होता, एक उनका जो नोट को सिक्कों में बदलने आते और एक समूह वह जो अछूत और अपराधियों की तरह काफी अलग-अलग और दूर बैठा अपनी जमी हुई आँखों से बराबर दरवाजे की ओर ताकता रहता। इनमें से पहिले ग्रुप का आकर्षण न विशिष्ट था और न महत्वपूर्ण। शायद छोटी-मोटी लालच कैंडी या पिपरमेन्टों की होती क्योंकि एड किसी-किसी सुबह यही करता था। वह सब बच्चों को बुला लेता—अकारण ही एक सिरे से मिठाइयाँ बाँटना शुरू कर देता फिर उन्हें तृप्तिपूर्वक चूसते देखकर अन्त में मुस्कुराकर कहता—अच्छा, अब तुम लोग जाओ ?

दूसरे समूह में प्राय: चार-आठ लोग होते, ऐसे लोग जो नोटों के बदले एड से सिक्के लेने के लिए खड़े रहते। आदिवासियों के बीच जो मूल्य सिक्कों का है, वह नोटों का कतई नहीं। उनके लिए इन्हें सम्भालकर रखना चाहे एक के हों, पाँच के या दस के, ख़ासी बड़ी ज़हमत है। शायद इसीलिए पहिले तो वे नोट स्वीकार ही नहीं करते और यदि विवशतापूर्वक करना ही पड़े तो उन्हें सिक्कों में बदलने के लिए बेचैन हो जाते हैं। पहिले पहल ओरछा में बसते ही एड के सामने जो माँग आई वह सिक्कों की ही थी। उस इलाके में सिक्कों की वैसी अहमियत होगी, यह उसने नहीं सोचा था और स्वभावत: ही टाल आया था। लेकिन गाँव

का रुख देखकर उसे जगदलपुर के बैंक से कई सौ रुपयों के सिक्के लाने पड़े। अब हाल यह है कि सुबह से लेकर रात तक कोई-न-कोई हाथ में नोट लेकर खड़ा रहता है और एड चाहे या न चाहे व्यस्त हो अथवा खाली बैठा हो, अनमने भाव से उठकर उसे निबटाना ही पड़ता है।

और तीसरा ?

आज भी तीसरे समूह के बारे में सोचते हुए मेरी आँखों में वह तस्वीर सजीव हो उठती है जो ओरछा में रहने के दौरान मन में नक़्श हो चुकी थी। तस्वीर का वह टुकड़ा कितना मर्मस्पर्शी है कि उसकी एक झलक-मात्र ही मन को उदास कर जाती है।

कॉटेज के अहाते का काफी अलग-अलग कोना। पुरुष, स्त्रियों तथा बच्चों का एक सहमा-सहमा व भयभीत-सा समूह एड के बन्द कमरे की ओर ताकता हुआ अचानक कुछ घट जाने की प्रतीक्षा कर रहा है। सुबह की धूप आँगन में उतर कर बरामदे के एक कोने को छू रही है, एड अभी भीतर है।

मेरे बाहर आते ही सहसा उस समूह में एक छोटी-सी हलचल होती है। कई जोड़े आँखें जो एड के निकल आने के प्रेम में एकाएक चमक उठी थीं फिर से मायूस होकर लटक जाती हैं और वे लोग एक-दूसरे की ओर तसल्ली देती आँखों से देखकर चुप हो जाते हैं। उसके बाद फिर वही ढलकी गर्दन और उदास आँखों से उन लोगों का दरवाजे की ओर घूरना और अनवरत प्रतीक्षा !

—"जीवित मृत्यु और कैसी होती है ?" उन्हें देखते हुए एकाएक मेरे मन में यही विचार आया—"क्या एक जीवन इस तरह भी होता है ? बस्तर के जिन आदिम जातियों के उल्लासमय गीत, उन्मुक्त नृत्य और उमंगपूर्ण जीवन की चर्चा में पन्ने-के-पन्ने रँगे जाते हैं, वे क्या सचमुच यही हैं ? उनके बीच जिस रूमानी ज़िन्दगी की कल्पना हम लोग दूर के सभ्य नगरों के ड्राइंग रूमों में बैठे करते हैं, उसका वास्तविक स्वरूप क्या यही है ? क्या यही है वह सहज स्वाभाविक और अकृत्रिम जीवन जिसके लिए हमारे होठों से कई बार ईर्ष्या भरे वाक्य निकलते हैं ?"

मैं जैसे भीतर-ही-भीतर सिहर गया। समूह में तीन प्रौढ़ पुरुष, एक वृद्धा, चार-पाँच युवतियाँ और दो छः-सात साल के बच्चे थे, बीमार लागर व कमजोर। किसी का शरीर 'योज' से गल रहा था, किसी को 'हाइड्रोसिल' ने चलने-फिरने लायक नहीं रखा, किसी का बदन और दूसरे चर्मरोग से चितकबरा हुआ जा रहा था किसी को साँस लेने में कठिनाई पड़ रही थी और कोई सूखकर हड्डी-पसली ही रह गया था। हर आँख बीमार और हर दृष्टि बुझी हुई...। वहाँ बैठे-बैठे लगा, बच्चे से लेकर बूढ़े तक, सबकी उम्र बराबर है, सब हमज़ात व कमज़ात हैं। ऊपर एक काला तथा अदृश्य-सा शामियाना तना है जिसके नीचे सबके-सब पाँव-पर समेटे दुबके हुए हैं—आशंकित व भयभीत !

पर उन्हीं चेहरों में सहसा एक असाधारण परिवर्तन मैंने तब देखा जब एड उनके पास आकर खड़ा हो गया। सबके-सब हड़बड़ाकर उठ गए। पीछे-पीछे आया अमरसिंह व उसके साथ दवाइयों का बाक्स उठाए हुए मासा...

दूर बैठा मैं बीमारों से घिरे एड को देखता रहा। धूप में उसका शरीर चमक रहा था, सुनहरे बाल माथे पर धीरे-धीरे काँप रहे थे लेकिन उसके दोनों हाथ थे कि बीमार हाथों को थामे बराबर व्यस्त ! किसी का घाव देखा जा रहा था, किसी के ज़ख्म पर दवा लग रही थी, किसी को तसल्ली दी जा रही थी और किसी को उत्साह...वातावरण में कई प्रकार की दवाओं की गन्ध समाई हुई थी।

—"क्या मैं किसी डर से इतनी दूर आ बैठा हूँ ?" अचानक मैंने अपने आप से चुपचाप पूछा—"वैसी आत्मीयतापूर्वक किसी 'याज' से गल रहे हाथ को छूना या उसमें दवा लगाना क्या मैं भी कर सकता हूँ ? क्या ऐसी खतरनाक बीमारियों से घिरकर भी मन की वितृष्णा को रोका जा सकता है ? और नहीं तो यह संवेदना जो बार-बार मेरे मन में जग आती है, वास्तव में क्या है ?"

—"तुम तो अच्छे-खासे डाक्टर हो ?"

उन रोगियों के चले जाने पर मैंने एड से कहा। वह लौटते हुए रोगियों के ठिठकते पाँवों की ओर देख रहा था, चौंककर मेरी ओर पलटा, एक पल टटो-लती-सी नजरों से मुझे घूरता रहा फिर धीरे से कंधे उठाकर बोला—"आई विश आई कुड बी ?"

मैंने देखा यह कहते हुए उसकी आँखों में एक खीझभरी विवशता और होठों पर उदास-सी मुस्कराहट तैर आई है।

—"तुमसे सच कहूँ," थोड़ी देर बाद मेरी तरफ देखकर एड बोला—"डाक्टर के पेशे ने पहिले मुझे कभी इतना आकर्षित नहीं किया था। लगता था और पेशों की तरह एक पेशा यह भी है, बस। लेकिन ओरछा आने के बाद मेरी धारणा ही बदल गई। यहाँ आकर खुद डाक्टर बन जाना पड़ेगा, यह मैंने कब सोचा था ?"

और उसके बाद पहिले दिन से लेकर डाक्टरी शुरू करने का विस्तृत विवरण उसने दिया। वन-पहाड़ों में दो-दो साल सुरक्षित व स्वस्थ बने रहने के लिए एहतियातन थोड़ी-सी दवाइयाँ उन्होंने रख ली थीं। अनुभव के नाम पर केवल उतनी ही जानकारी थी जितनी कि 'केटलॉग' देखकर किसी भी साधारण आदमी को हो जाती है। लेकिन यहाँ आने पर कुछ लोगों की तकलीफें उससे देखी नहीं गईं सो उसने दाद-खुजली आदि चर्म रोग की दवाएँ दे दीं। उसी तरह एक-दो लोगों के पेट की शिकायतें भी जाती रहीं। अजीब बात है कि उनके आराम होने की खबर अबूझमाड़ में दूर-दूर तक फैल गई और उसके बाद लोगों का तांता लग गया।

—"मेरी हालत उस पहुँचे हुए वली-जैसी है," एड ने हँसते हुए कहा—"जिसने मजाक-मजाक में चुटकी-भर राख उठाकर दे दी हो और संयोग से मरीज अच्छा हो जाय। अब उसी संयोग के बिना पर यदि भक्तों से घिर जाय और लाख सच कहने पर भी लोग छोड़ने या मानने को तैयार न हों तो कोई क्या करे ? बहरहाल मैं भी ऐसा ही डाक्टर हूँ जिसे न होने का अपराध-भाव हर पल खाए जाता है···"

उतना कहकर वह चुप हो गया लेकिन मुझे लगा जैसे वह पहिले चुप था और बोल अब रहा हो। जैसे इस ऊपरी चुप्पी के बाद ही उसका वास्तविक स्वर फूट रहा हो। क्या उसके स्वर की व्यथा में अपनी व्यर्थता का बोध न था ? क्या यूँ नहीं लग रहा था जैसे सहसा ही उसे अपने काम के खोखलेपन का एहसास हो गया हो ? समाजशास्त्र का आधार अवश्य मानवीय है लेकिन वैसी संवेदनात्मक दृष्टि की अपेक्षा तटस्थ, निर्विकार व वैज्ञानिक दृष्टिकोण की वहाँ अधिक आवश्यकता है। अन्यथा एक भावुक कथा-लेखक और निर्मम समाज वैज्ञानिक में अन्तर ही क्या हुआ ? पर उनके बीच रहकर निर्विकार रह सकना कितना कठिन था !

और स्थान और स्थिति के अनुसार उन दोनों से भी अधिक क्या किसी तीसरे की ही आवश्यकता वहाँ नहीं थी।

—"यू सीम टु बी क्वाइट हाई, डोन्चयू ?"

पीछे से एड ने चिटकती-सी आवाज में कहा और बहुत हल्के स्वर में हँसने लगा। मैंने पलटकर नहीं देखा। सामने टार्च से रोशनी करता और राह दिखाता हुआ अमरसिंह बराबर चल रहा था। उसी के सहारे सकरी पगडंडी पर नज़र जमाए, धीरे-धीरे पाँव रखता हुआ मैं हँसने लगा और बोला—"नहीं···"

हम लोग सलपी पेड़ से वापस आ रहे थे। सामने टार्च लिए हुए अमरसिंह, उसके पीछे मैं, एड और फिर ओरछा-निवासी माड़ियों की लम्बी कतार। रात की शुरुआत का भयानक वन, घना और एक-दूसरे से गुथा हुआ—बीच में केवल एक आदमी के चलने की पगडंडी थी। वे ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे और केवल उन्हीं की आवाज रात के सूने वन में दूर-दूर तक गूँज रही थी। हम लोग प्रायः खामोश थे सिवाय एड के उस एक वाक्य के जिसका जवाब मैंने 'नहीं' से दिया था। हालाँकि 'नहीं' कहते हुए भी मुझे बराबर लगा कि मैं झूठ बोल रहा हूँ। क्या उतनी सलपी पी जाने के बाद भी अपने को सँभाल रखना आसान था ? दोनों पाँव मुझे निहायत हल्के लग रहे थे, आँखों के आगे का हर दृश्य परदे की तरह उठता और गिरता दिखाई दे रहा था और यूँ महसूस हो रहा था जैसे किसी भी क्षण पगडंडी के बदले वन में पाँव धर कर मैं भटक जाऊँगा !

रात-रात को अबूझमाड़ के वन कैसे लगते हैं ? साँय-साँय और चुप्प। ऐसा सन्नाटा कि पत्तों पर कीड़ों के रेंगने की आहिस्ता आहट मालूम होती है, दीमक के ऊँचे-ऊँचे डेंगुर झरते-से लगते हैं, दूर से जंगली सूअर और वन-मुर्गी की आवाज़ आती है और किन्हीं पेड़ों बीच दो तरह के जंगली परिन्दे चिल्लाते हैं—एक वह जो अचानक अपनी आवाज़ को तेज, तेजतर और तेजतरीन बनाकर 'की-की-की-की-की' करता हुआ एक साँस से पुकार उठता है, दूसरा बेहद भारी और डरावने स्वर वाला परिन्दा, जो केवल एक बार बोलकर बड़ी देर के लिए चुप हो जाता है—कुड्डूउऊऊऊर ! कुड्डूऊऊऊर !!

झाड़ियों की ओट बनबिलाव या खरगोश की आँखें अचानक जलकर बुझ जाती हैं। एक क्षण के लिए अजीब-सी आशंका के कारण मैं सिहर पड़ता हूँ।

जब हम लोग सलपी पेड़ के गिर्द बैठे थे, तब भी एक बार ऐसा ही हुआ था। अँधेरा फैलने के पहिले का हल्का झुटपुटा। सर्दियों का नीला-नीला कोहरा, शाल, सागौन और दूसरे पेड़ों की गर्दनों तक झुक आया था। हम लोगों के बीच, मोटे-मोटे लट्ठों की अँगीठी जल रही थी, जिसकी आँच की तपिश में थमा हर आदमी सलपी के दौर चलने की प्रतीक्षा कर रहा था। बड़ी-सी तूँबी में ताजा उतरी सलपी मुँह तक उफनती धरी थी और एक ओर की आग में शिकार का मांस भूना जा रहा था। एड का ध्यान दरअसल उसी ओर था। वह उस क्षण की बाट देख रहा था जब वहाँ का हर आदमी मूड में आकर अपना सारा संकोच उतार फेंके और उससे कुछ ऐसे प्रश्न पूछे जा सकें जिन्हें सामान्य स्थिति में पूछ पाना ही कठिन होता है। क्या सचमुच एड की धारणा ठीक है कि नशे में आदमी कभी झूठ नहीं बोलता ?

एक व्यक्ति गोल घेरे के बीच सलपी की तूँबी लेकर बैठ गया, हम सबों ने शाल पत्तों के प्याले सम्हाल लिए और फिर दौर चला···एक-दो नहीं, चार-चार। पेड़ से ताजा उतरी दूध-जैसी सफेद खट-मिट्ठी सलपी और आग में भुना हुआ मांस। थोड़ी ही देर में वही माहौल बन गया जिसकी प्रतीक्षा थी और उसके बाद एड के प्रश्नों की झड़ी लग गई।

सब सुन-सुनाकर मुझे एकाएक विश्वास नहीं हुआ। आदमी अपनी नैतिकता और यौन जीवन के बारे में सरे-महफिल उस तरह खुल सकता है, यह मैं सोच भी नहीं सकता था।

सारे समय में उस आदमी की ओर देखता रहा जो थोड़ी देर पहिले केवल रस उतारने के लिए पचास-साठ फीट ऊँचे पेड़ की चोटी पर जा पहुँचा था। सलपी का पेड़ नारियल की तरह एक पींड वाला, लम्बा और बिना शाख-टहनियों का होता है। ऊपर पहुँचने के लिए एक उभरे हुए तथा लम्बे गठानों वाला बाँस लटका दिया जाता है और उसी के सहारे लोग ऊपर टँगी उस हाँडी तक पहुँचते

हैं जहाँ बूँद-बूँद करके जूस चौबीसों घंटे इकट्ठा होता रहता है।

जब तक वह आदमी ऊपर टँगा रहा मैं गर्दन उठाकर धड़कते दिल से उसकी ओर ताकता रहा। यदि बाँस या रस्सी धोखा दे दे अथवा टूट जाए तो ? उस 'तो' के जवाब में कई दुर्घटनाओं की आँख-देखी कहानियाँ मुझे बताई गईं—उतनी ऊँचाई से गिरने वाले का एक ही भाग्य होता है—अत्यन्त करुण, दर्दनाक और दिल दहलाने वाला अंत ! लेकिन इसके बावजूद न तो सलपी के प्रेमियों की संख्या घटती है और न रस उतारने वालों की। आसपास वैसी घटनाएँ प्रायः होती हैं, लोग सुनते हैं लेकिन कोई न कोई हल्की और फुसफुसी-सी दलील रख दी जाती है—अवश्य उस अभागे का ही कोई दोष-खोट रहा होगा, नहीं तो हर आदमी जो ऊँचे से ऊँचे सलपी पेड़ से रस उतारता है, भला क्यों नहीं गिर पड़ता ?

मैंने देखा आदमी वही है, वही जो हम लोगों के साथ-साथ पेड़ तक आया था। वही जो थोड़ी देर पहिले हवा में टँगा रहा। सारे खतरे को काटकर वह चुप-चाप नीचे भी उतर आया और भीड़ में मिलकर बिल्कुल बेअसर बैठा सलपी पी रहा है। लेकिन उस क्षण उसका व्यक्तित्व मुझे सबसे भारी लगा था। साहसी व्यक्ति मुझे चकित कर देते हैं। (इसका कारण कहीं यह तो नहीं कि मैं स्वयं ही भीतर से कहीं बेहद कमजोर हूँ ?)

और ऐसे ही साहस का परिचय अधिकांश लोगों ने तब दिया जब पेड़ के पीछे वाले जंगल में सूअर की आवाज गूँजी और एक क्षण के लिए सब चौकन्ने हो गए थे। फिर उसके सामने आने की संभावना-असंभावना पर बातें करके सब नार्मल मूड में आ गए और एड ने अफसोस प्रकट किया कि वह रायफल लेकर नहीं आया। तब भी मुझे यही लगा था। सोचा, कहीं ऐसा तो नहीं कि सलपी के खुमार ने खतरे की आशंका को हर किसी के दिमाग से निकाल दिया है या संभवतः मेरी ही बदहवासी के कारण हर छोटी चीज बड़ी नजर आ रही हो।

—"बता सकते हो," सहसा और निकट आते हुए एड ने पूछा—"बता सकते हो कि हम लोग गाँव से कितनी दूर आए थे ?"

—"नहीं।"

—कम से कम तीन मील।"

कहकर एड हँसने लगा और मैंने सोचा कि यदि मुझे यह बात पहिले मालूम होती तो शायद मैं न आता। शायद यह बात मुझे पटती नहीं कि केवल सलपी पीने के लिए मैं तीन मील चलूँ और वह भी शाम-शाम को अबूझमाड़ के वन में।

लेकिन एड की बात और है। इधर तीस बरसों बाद सलपी का वह पेड़ पहिली बार रस देने लगा है। शाम को करीब-करीब तीन चौथाई गाँव वहीं इकट्ठा होता है और बड़ी देर बाद सब वहाँ से लौटते हैं। अव्वल तो किसी दूसरी

जगह इतने सारे लोग एक साथ कभी नहीं मिलते। दूसरे सलपी पेड़ के नीचे की बैठक और ही होती है। वेखुद, वेपरदा और खुली !

घोटुल !

इस शब्द को ओठों पर लाते ही अक्सर मुझे रोमांच हो आता है। शायद शब्दों का भी एक संस्कार होता है। इसका भी है। जब-जब यह शब्द जहन मे आता है मेरी आँखों के सामने कई रोमानी तस्वीरें आकर खड़ी हो जाती हैं— कुछ देखी हुई; कुछ सुनी-सुनाई और कुछ नितान्त कल्पित !

मूलत: घोटुल मुरिया जाति की अपनी विशिष्ट परम्परागत संस्था है जिसकी व्यवस्था केवल उत्तरी बस्तर के कुछ भागों में बची रह गई है। यह गाँव के अविवाहित युवा तथा युवतियों का एक ऐसा सुनियोजित संगठन है जो उनके समस्त सामाजिक जीवन को अर्थ, शक्ति अथवा प्राण प्रदान करता है। आदिम जातियों के विशेषज्ञ डाक्टर वेरियर इलविन के अनुसार घोटुल वास्तविक अर्थों में मुरिया जाति के जीवन व चरित्र का नियामक है। यही वह संगठन है जो प्रत्येक सदस्य के चरित्र में अनुशासन, सहिष्णुता, उदारता तथा अन्य उदात्त गुणों का बीजारोपण करता है तथा एक ऐसा स्कूल है जहाँ उन्हें भविष्य के वैवाहिक व यौन जीवन की महत्वपूर्ण शिक्षा मिलती है। उत्तर बस्तर के जिन गाँवों में घोटुल की प्रथा है वहाँ एक अलग-अलग कुटिया बनी होती है। संध्या होते ही गाँव के सभी अविवाहित युवक तथा युवतियाँ वहाँ एकत्रित होते हैं, देर तक नृत्य-गान चलता रहता है और अंत में वे सब वहीं सो जाते हैं। इसके सदस्यों में बाकायदा संगठन होता है। उन्हीं के बीच से मुखिया तथा अन्य अधिकारी चुने जाते हैं जो घोटुल प्रशासन के लिए पूरी तरह उत्तरदायी होते हैं।

लेकिन केवल चालीस-पचास मील के फासले पर बसे अबूझमाड़ की घोटुल प्रथा का स्वरूप और ही है, यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ।

सलपी पेड़ से वापस लौटने में इतनी रात हो गई कि गाँव में सन्नाटा पड गया था। कोहरा पहिले से गाढ़ा होकर गिर रहा था। और सर्दी अपेक्षाकृत बढ़ गई थी। गाँव का हर घर ढँका-मुँदा और वीरान लग रहा था सिवाय उन अँगीठियों के जो कई घरों के सामने जलने के कारण दूर से टिमटिमा रही थीं। उस सन्नाटे को भेदने वाली वहाँ केवल एक आवाज थी जो दूर-दूर तक गूँज जाती थी, वह भी इक्के-दुक्के कुत्तों के भौंकने की आवाज़। वैसे में हम लोग कॉटेज के पास ठिठककर रह गए। जब देखा कि पूर्व की पहाड़ियों से खूब बड़ा-सा चाँद धीरे-धीरे उभर रहा है, और कॉटेज के बाईं ओर खड़े बेर की कँटीली और विरली शाखों में निहायत दूधिया चाँदनी आँगन में बरस रही है। वातावरण में सर्दी, सन्नाटा,

माड़िन नदी का अनछुआ शोर और कोहरे के रेशे-रेशे में सनी मद्धम चाँदनी ! लगा, मैं वहीं का होकर रह जाऊँगा।

लगभग घंटे भर बाद जब वही चाँद छोटा होकर और ऊपर चढ़ आया तो माड़ित नदी के शोर में एक और समवेत स्वर घुलने लगा और शायद उसी का आकर्षण था कि थकावट के बावजूद हम लोग ओरछा के घोटुल तक उस रात खिंचे चले गए···

घास-फूस की वही छोटी-सी कॉटेज। सामने जलाऊ लकड़ी का कोई बीस-फीट ऊँचा अम्बर पड़ा हुआ था और उसी के बाजू वाले खुले मैदान में युवक युवतियों का सामूहिक गीत वाला नृत्य चल रहा था। नृत्य क्या, एक नौटंकी-सा खेल था—

"कहीं बाहर के कुछ शिकारियों ने वन के एक चीतल का शिकार किया लेकिन वह चीतल ज़ख्मी होकर भाग निकला और दुर्भाग्यवश उसे शरण भी मिली तो गाँव वाले की। गाँव वालों की संभवत: नीयत खराब थी, जब शिकारी अपने शिकार को ढूँढ़ते हुए गाँव में पहुँचे तो गाँव वालों ने जख्मी चीतल को छिपा दिया।

गाँव वालों के रूप में युवक-युवतियों का एक छोटा-सा सटा हुआ घेरा है जो गोल-गोल घूमकर नाचते हुए गीत गा रहा है। घेरे के बीच में ज़ख्मी चीतल के रूप में एक छोटा-सा लड़का छिपाया गया है।

कुछ दूरी पर तीन-चार शिकारी अलग नृत्य कर रहे हैं। उनके साथ कुत्ते भी हैं जो घेरे की गति के साथ-साथ चल रहे हैं। उनका प्रयत्न यह है कि किसी तरह उस घेरे को तोड़कर ज़ख्मी शिकार पकड़ लें।

गीत में शिकारियों का प्रश्न है कि उनके तीरों से घायल चीतल (जिसके पैरों व रक्त के निशान से वे वहाँ तक आए थे) इसी गाँव की ओर आ छिपा है, क्या किसी ने उसे देखा है ?

"नहीं देखा, नहीं देखा !" गांव वालों का जवाब है। वही प्रश्न और कई प्रकार से दुहराकर किया है लेकिन गाँव वालों का एक ही जवाब है कि वहाँ कोई चीतल नहीं आया। गीतों में यह सवाल-जवाब बड़ी देर तक चलता रहता है। अंत में शिकारी कुत्ते अपने प्रयत्न में सफल होते हैं—घेरे को तोड़कर वे शिकार उठा लाते हैं और इस तरह खेल खत्म होता है।"

एक पेड़ के साये में अलग-अलग खड़े हम लोगों ने चुपचाप वह सारा खेल देखा। चाँदनी वैसी ही चटक थी लेकिन वहाँ से किसी के भी चेहरे को पहिचान पाना कठिन था। केवल यही दिखता था कि उस धुली-धुलाई उजली रात में कुछ स्त्रियों व पुरुषों का एक झुंड गतिशील है। उनके सफेद रंग के मैले कपड़े भी जुहाई में भीगे हुए साफ-साफ लगते हैं और गीत की धुन के साथ उनके हाथों वाले गिलट के कड़े रह-रहकर चमकते हैं।

नाच के ख़त्म होने के बाद ही झुण्ड बिखर गया। पहिले दो-दो चार-चार युवकों तथा युवतियों के झुण्ड अलग-अलग खड़े दबे-दबे स्वर में गाते, एक दूसरे को छेड़ते, आपस में हँसी-मज़ाक करते और खिलखिलाते जमे रहे लेकिन थोड़ी देर बाद वह सिलसिला भी जाता रहा। धीरे-धीरे करके वे लोग पास खड़े पेड़ों की छाँव तक सरककर गए और बड़ी देर तक उन अँधेरे सायों के कोनों से चुहल, छीना झपटी, खींचतान और उन्मुक्त हँसी के साथ की वहशियाना पकड़-धकड़ की आहट मिलती रही।

"यह भी एक पहलू है," मैंने सोचा—"लेकिन केवल यही सबसे ज्यादा हमारी दृष्टि की माँग करता हो ऐसा भी नहीं है।" मैंने एड की ओर मुड़कर देखा। कुछ कहना चाहता था, लेकिन होंठ हिलने के पहिले ही एड ने हाथ के इशारे से मुझे रोक दिया और सामने देखने लगा।

सामने के दृश्य में उसी क्षण एक परिवर्तन हुआ। पेड़ों की छाँव वाले झुण्ड में से कोई एक युवती जैसे किसी से छूटकर निकली और हँसती-हँसती आकर खुले आसमान के नीचे खड़ी हो गई। एक पल बाद उसी छाँव में से कोई युवक तेजी से भागता हुआ निकला और उसे अपनी ओर आता देखकर युवती फिर दुगुने वेग से भागी।

मेरा खयाल है इस सारे व्यापार में कठिनाई से एकाध मिनट लगे होंगे। आखिर लाख भागने, गच्चा देकर निकलने या बचने की कोशिश के बावजूद उसे पकड़े ही जाना था। जहाँ हम लोग खड़े थे, संयोग की बात कि दौड़ती-दौड़ती आकर वह उसी छाँव के पास रुक गई—वैसे ही जैसे थककर अंत में मुर्गी बैठ जाती है। वह ज़ोर-ज़ोर से साँस लेती हुई हाँफने लगी थी। तभी तीर की तरह छूटे हुए युवक ने आकर उसे पीछे से जकड़ लिया और एक बार खुशी की बड़ी किलकारी मारकर युवती चुप हो गई। शायद वह हँसते-हँसते ढेर हो जाना चाहती थी, शायद वह कुछ कह रही थी या कुछ कहती कि अमरसिंह ने मूर्खता कर डाली उसने अचानक ही उधर टार्च की रोशनी फेंक दी और लम्हाभर ठहरकर बोला—"मासा!"

कुछ देर के संकेत और स्थिरता के बाद वहाँ से प्रश्नभरी आवाज आई—पेपी?

और उसे वहीं छोड़कर हँसता हुआ मासा हम लोगों के निकट चला आया। मैं सोच रहा था कि मासा लज्जित होगा या यह कि इस समय बातें करते हुए अवश्य झेंपेगा पर मेरी धारणा ग़लत निकली। बिल्कुल निर्विकार व निरपराध भाव से आकर वह खड़ा हो गया और उसी स्वाभाविक स्वर में पूछने लगा कि हम लोग कब आए, क्या खाना-पीना हो गया, क्या शिकार के लिए निकले हैं, आदि।

युवती वहाँ से भागकर अपने झुण्ड में मिल चुकी थी और धीरे-धीरे यह हुआ कि एक-एक, दो-दो के छिटकाव सहित उसी उल्लासमय स्वर में गाती हुई सारी लड़कियाँ अपने-अपने घर लौट गईं। थोड़ी देर बाद वातावरण में वैसा कोई कोलाहल नहीं रहा। हम लोगों के साथ सभी युवक घोटुल के भीतर वाली अँगीठियों के पास बैठ गए और थोड़ी-सी तपिश के बाद सारा माहौल अत्यन्त मैत्रीपूर्ण व आत्मीय हो गया।

तब भी मुझे बराबर लगता रहा जैसे लड़कियाँ गई नहीं हैं या चली भी गई हों तो अपनी आवाज छोड़ गई हैं। जैसे उनका स्वर वायु लहरियों में फँसा हो और माड़िन नदी के शोर वाले हर झोंके के साथ एक पंक्ति बार-बार आकर टकरा जाती है —

कोकोरे ऽ-ऽ-ऽ-ऽ कोरेंग !
आचींग रोय दादा, कोकोर कोरेंग !
काकड़ रोय दादा, कोकोर कोरेंग !

आखिर बड़ी देर तक गोल-गोल बातें करने के बाद अमरसिंह से मैंने पूछ ही लिया तो वह झेंपकर दूसरी ओर देखने लगा। अच्छा-भला जवान और साक्षर मुरिया लड़का, लड़कियों की तरह शरमा रहा है देखकर मुझे हँसी आ गई, बोला—"तुम न बताओ वह बात दूसरी है लेकिन मैं जानता हूँ कि यह सब होता है।"

—"फिर पूछते क्यों हैं साहब ?" विनम्रतापूर्वक धीरे से हँसकर तिरछी तिरछी आंखों से केवल एक बार मेरी ओर देखकर अमरसिंह ने कहा और झुककर उसने किसी जंगली पौधे की टहनी तोड़ ली।

ये बातें दूसरी सुबह की हैं जब मेरे और अमरसिंह के अलावा कोई नहीं था। एड भी नहीं। वह भीतर बैठा अपने नोट्स टाइप कर रहा था और खाली होने के कारण अमरसिंह मेरे पास आ गया था।

पिछली रात घोटुल से लौटने के बाद जल्दी नींद नहीं आई। कई उल्टे-सीधे सवाल दिमाग में आ रहे थे। कुछ बातें घोटुल के जीवन के बारे में थीं, कुछ अपने बारे में और कुछ दोस्तों के; लेकिन सबका केन्द्र-बिन्दु एक ही था। कोई पूछे कि आखिर वह क्या था तो आज भी मैं कुछ बता सकता हूँ ? बहरहाल, अमरसिंह से पूछने के बाद भी बहुत देर तक मुझे अपने स्वर पर विश्वास नहीं हुआ। क्या सचमुच वैसे प्रश्न मेरे हो सकते हैं ? मुझे एड का वह मजाक याद आ गया जब ऐसे ही किसी प्रश्न का जवाब दिए बिना वह हँसने लगा था और बाद में उसने छेड़ते हुए कहा था—"यू नीड ए गर्ल-फ्रेंड, शानी !',

लगा, अमरसिंह ऐसी कोई बात भले न कह पाए लेकिन सोच जरूर रहा

होगा। अपने अफसोस और उसके संकोच को कम करने के लिए मैंने धीरे से कहा—"भाई, मैंने तो घोटुल में तीन-तीन रातें रहकर देखा है, वहाँ के सदस्यों से दोस्ती की है और अच्छी तरह जानता हूँ। मेरे लिए ऐसी बात नई नहीं है। वह तो मैंने इसलिए पूछ लिया कि तुम भी घोटुल के सदस्य रहे होगे और चूँकि पढ़े-लिखे आदमी हो इसलिए शायद ईमानदारी से बता जाओ···"

अमरसिंह हँसने लगा और जैसा कि मेरा अनुमान था, अपने घोटुल जीवन की सारी कच्ची-पक्की बातें उसने निस्संकोच मेरे सामने धर दीं।

नारायणपुर तहसील के बिजली गाँव का निवासी है अमरसिंह, जाति के मुरिया पेशे से किसान और अपने गाँव का सबसे ज्यादा पढ़ा लिखा युवक। मुरिया-परिवार में जन्म लेकर भी यदि जैसे-तैसे उसने प्रायमरी पास कर ली तो मामूली बात नहीं हुई। परम्परा के अनुसार किशोरावस्था से ही वह घोटुल जाने लगा और धीरे-धीरे एक वह दिन आया जब वह घोटुल का मुखिया बन गया—ऐसा अधिकारी जिसकी आज्ञा घोटुल में सर्वोपरि मानी जाती है। उसी के इशारे और हुक्म से साथियों की अदला-बदली होती है—सिवाय मुखिया के किसी को भी यह अधिकार नहीं कि एक युवती के साथ तीन दिनों से अधिक कोई रह सके। जो भी सदस्य यह करते पाए जाते हैं घोटुल का नियम भंग करने के अपराध में उन्हें सज़ा मिलती है अथवा उसे आपस में ब्याह करके घोटुल छोड़ने का अनुरोध किया जाता है।

—"मुझे घोटुल छोड़े आज पाँच साल हो गए," अमरसिंह ने कहा—"शादी हो गई और बच्चे भी हैं लेकिन आज भी घोटुल में कोई ग़ैर-मामूली बात हो तो फैसले के लिए मुझे ही बुलाया जाता है। हालाँकि उनका मुखिया न हो ऐसी बात नहीं। एकाध बार मैं भले चला जाऊँ लेकिन अक्सर टाल जाता हूँ। जिस जिन्दगी को मीलों पीछे छोड़ आए हों वहाँ बार-बार लौटने से क्या फ़ायदा?"

उसके स्वर में दर्द भरे संकेत को पकड़कर मैंने धीरे से पूछा—"अमरसिंह जिस लड़की से तुम्हारी शादी हुई, क्या वह तुम्हारी घोटुल की संगिनी नहीं थी?"

—"नहीं।"

—"फिर?"

—"उसका ब्याह किसी दूसरे गाँव में हो गया।"

—"शादी के बाद कभी उससे मुलाकात नहीं हुई?"

—"हुई थी।" अमरसिंह ने झिझकते हुए कहा—"अक्सर बाजार—आजार में हो जाती है लेकिन अब तो वह पराई है। जो अपना नहीं उससे दो-चार बोलों के अलावा और क्या सम्बन्ध रह जाता है?

और उसके बाद वह मेरे ही मूल प्रश्न पर आगया। मैंने कहा था कि अजीब बात है कि अबूझमाड़ की घोटुल-प्रथा नारायणपुर तहसीलों से इतनी भिन्न

और अलग-सी है। न संगठन और न कोई अनुशासन। जैसे घोटुल नाम के पीछे एक जगह मात्र हो जहाँ संध्या समय लोग इकट्ठे होकर अपना जी बहला सकें और बस। पहिले मुझे यह मालूम हुआ था कि गाँव के सभी अविवाहित युवक मात्र ही एकत्रित होते हैं, युवतियाँ नहीं आतीं। पर जब मैंने आँखों से वही देख लिया तो हर बात पर अविश्वास होने लगा। अपने आप में यह कितनी दुखदाई हैं कि हम लोगों से घोटुल के बारे में बातें करने में हर आदमी चाहे बूढ़ा हो या जवान, संकोच करने लगता है और कई बार सही बातें सामने आती ही नहीं। और तो और हम लोगों के साथ का अमरसिंह भी पहिले-पहल झेंपकर रह गया और बड़ी देर तक गोल-गोल बातें करता रहा जब मैंने उनके आपसी संबंधों को लेकर सीधे एक सवाल कर दिया···

अब अमरसिंह पता नहीं कहाँ है। निश्चय ही अपने गाँव की पुरानी ज़िन्दगी में लौट गया होगा जहाँ उसके खेत हैं, बीवी है, बच्चे हैं। संभव है, ओरछा के बीते दिनों की याद उसके लिए कोई मानी ही नहीं रखती हो। शायद वे भावुक क्षण और मस्ती की घड़ियाँ भी पूरी तरह भुलाई जा चुकी हों जिनका भागीदार अकेले मैं था—केवल मैं, जो कई रात एड को काम में मसरूफ देखकर प्रायः उसके कमरे में खिसक गया था। छोटा-सा कमरा, खाट के पास की ज़मीन में मोटी-मोटी लकड़ियों की अँगीठी और उसे घेरकर बैठे हम दोनों। गीत कई हैं, गीत के बोल कई हैं और ऐसे क्षण भी कई जब अपने चेहरे पर अँगीठी का दमकता साया लिए अमरसिंह बहक गया है पर यह मेरी ही विवशता है कि उसकी स्मृति के साथ केवल गीत याद रह गया है—वही जो उसका अत्यन्त प्रिय गीत था और जिसे खूब खुलकर तथा लम्बी अलाप लेकर वह गाया करता था—

"रेरेलोयो, रेरेरेला, रेलारे रेला रेला रेरेला।
पारो माड़ी दमकी ते बारा कीयलतोन भाजी.
नोड़ोल वदूर सोलोड़ बेलोसा, सोलोड़ उराइतोन
बेलोसा सोलोड़ उराइतोन !
नका सोलोड़ उरसा माजी जीवा लगाइता
नाकनेर जीवा लक्रतेक बेलोसा, नाकेर वायतीन,
बेलोसा नाकेर वायतीन !
नाँगन गला वेहविर माजी, नीकेर वायेनन
इज्जके महलान बातूर माजी दाड़ेंगा उनटोर रोय
माजी दाड़ेंगा उनटोर रोय !

(स्त्री—ऐ मेरे मीत, इस सुनसान पहाड़ी की लम्बी-लम्बी घास के बीच अकेले बैठे यह तुम क्या कर रहे हो ?

पुरुष : बेलोसाराजी, यह बालिग बाँस की बाँसुरी मेरी अपनी संगिनी है । इसे ही छेड़कर मैं जी हल्का कर रहा हूँ ।

स्त्री : भगवान के लिए इसे बन्द करो ! मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ । देखो तो, तुम्हारी बाँसुरी की तान में मैं अपने आप को भूलती जा रही हूँ ।

पुरुष : बेलोसाराजी, तुम झूठ बोल रही हो । अगर यह सच होता और तुम्हारा मन सचमुच मेरी ओर लगा होता तो कब की मेरे पास भाग आई होतीं ।

स्त्री : हायरे, इस घड़ी से पहिले यह बात मुझे क्यों न मालूम हुई ? दुश्मन, तुमने मुझसे पहिले ही क्यों नहीं कहा ? मैं सब कुछ छोड़-छाड़कर तुम्हारे पास चली आती लेकिन अब तो लोग मेरी मंगनी की शराब लेकर आ गए—देखो, वे पी भी रहे हैं !

चार

ओरछा-निवासियों की इतनी बड़ी इकट्ठी भीड़ मैंने पहिले नहीं देखी थी। देखता हूँ कि मातादाई के मंदिर वाले पवित्र अहाते में पुरुष, स्त्री बच्चे और बूढ़े मिलाकर लगभग अढ़ाई सौ लोग जमा हैं। बच्चों को छोड़कर प्राय: सब शांत और गंभीर मुद्रा में हैं। बिना किसी व्यवस्था या प्रबन्ध के मंदिर के सामने वाले अहाते में एक गोल दायरा बन गया है जिसमें छूटे हुए या देर से आने वाले लोग चुपचाप आ-मिलकर आदर सहित बैठ जाते हैं—दोनों घुटने कँकरीली जमीन पर टिके हुए, गर्दनें मुद्रा से थोड़ी-थोड़ी झुकी हुईं, करुणा पूरित आँखें दया की भीख माँगती-सी और सारे चेहरों पर समर्पण का भाव···।

कुछ पहिले गाँव में शीतला माता का प्रकोप हुआ था। तब एक-चौथाई गाँव साफ हो गया। बच्चे, जवान और बूढ़े, सभी उठ गए और एक तरह से गाँव में हाहाकार फैल गया। स्वभावत: ही सारा गाँव देखता 'देवान' की शरण में पहुँचा और 'पेन-लस्किताल' नामक एक समारोह हुआ। देवता ने परिस्थिति की गंभीरता देखकर आदेश दिया था कि गाँव भर में मांस-भक्षण तब तक बंद कर दिया जाय जब तक कि देवी का प्रकोप शांत न हो जाए। आदेश का उसी तरह पालन किया गया और देवी शांत हुई तो एक दूसरा 'पेन-लस्किताल' का आयोजन हुआ। इस बार आदेश मिला कि गाँव वाले मिलकर 'माता-बिदा' का आयोजन करें।

उसी माता-बिदा के लिए आज सारा गाँव मंदिर के सामने इकट्ठा हो गया है। हर हृदय आभार और श्रद्धा से भरा हुआ। जो अछूते रहे वे तो कृतज्ञता-भार से नत हैं ही, जिन पर कुपित होने के बाद भी माता दया कर गईं उनके मन के आभार व श्रद्धा को बता सकना साधारण बात नहीं। ऐसे लोगों का समूह अलग और मंदिर के सबसे निकट घुटनों के बल बैठा है।

वैसे गाँव का अपना 'लस्के' भी है लेकिन इस आयोजन के लिए नलनार से एक विशिष्ट लस्के को बुलाया गया था। लस्के वास्तव में वह भाग्यशाली व्यक्ति होता है जिसके शरीर पर आवश्यकता, अवसर व समयानुसार देव हावी होता है

और उतनी देर के लिए वह साधारण व्यक्ति नहीं रह जाता—उसकी वाणी से देवता बोलते हैं। अपने इसी विशिष्ट गुण के कारण ही गाँव के समाज में उसका सम्मान सबसे अधिक होता है।

माता-बिदा संबंधी यह आयोजन वैसे सुबह से प्रारम्भ हो चुका था।

सूरज निकलने के साथ ही कुछ लोगों का एक समूह घोटुल के सामने इकट्ठा हुआ। गाँव के प्रत्येक परिवार की ओर से एक-एक व्यक्ति आकर लगभग दो-दो सेर चावल जमाकर गया। थोड़ी देर बाद गाँव के दो लस्कों पर माता-दाई आईं और थोड़ी-सी भीड़ के साथ वह जुलूस शीतला माता के मंदिर में जाकर थम गया। वहाँ देवी ने उन व्यक्तियों में से एक को अपने सामने बुलवाया जिस पर माता कुपित हुई थी। आदेश हुआ कि उसे बलिदान स्वरूप एक रुपया, एक मुर्गी, एक बकरा तथा सूअर देना पड़ेगा।

इस उत्सव का दूसरा महत्वपूर्ण चरण यह था कि उपस्थित लोगों में से एक छोटा-सा समूह बनाया गया जो कि गाँव के बाहर जाकर किसी ऐसे स्थान का चुनाव करें जहाँ कि देवी ले जाई जा सके। उसमें अंतर्निहित भावना संभवत: यह थी कि देवी को गाँव से बिदा कर दिया जाय। प्रतीक रूप में बीमारी भी गाँव के बाहर हो और लोग निश्चिन्त होकर अपनी 'नार्मल' जिन्दगी में लौट आएँ···।

—"आओ, उधर चलकर देखते हैं।"

सहसा मेरे कंधे को छूकर एड ने कहा और बिना अधिक प्रतीक्षा किए वह उस ओर बढ़ा जहाँ बलिदान के बकरे, सूअर, मुर्गी आदि लिए कुछ लोग खड़े थे हालाँकि उस समूची भीड़ में शायद एक भी आदमी ऐसा नहीं था जो कि खाली हाथ आया हो।

हुर्रररररर ! हिच्च ! हिच्च !!

अचानक मंदिर के निकट ऐसी कई-कई चीखें एक साथ उठीं और पहिले का थोड़ा-बहुत कोलाहल भी एकदम शांत हो गया। दोनों लस्कों पर पुन: देवी हावी हो गई थी और स्वभावत: ऐसी चीखें उनके किल्लोल को प्रकट करती थीं। जब पूरी तरह से देवी के अधिकार में आकर लस्के उठे तो भीड़ में एक हल्की-सी हलचल हुई। पटेल ने आगे बढ़कर देवी के माथे पर काली का टीका लगाया, वही टीका लौटाकर उसने अपनी पेशानी पर भी लगाया और उसके बाद देवीधारी दोनों लस्कों ने घुटनों के बल बैठे या खड़े लोगों में से प्रत्येक के निकट जाकर एक-एक भेंट दी। सारे समय माता देवी का पुजारी साथ बना रहा और भेंट समाप्त होते ही वह अधपके चावल का टीका प्रत्येक के माथे पर लगा देता। इस प्रसाद को काफी देर बाद और अंत में पाने वाले लोग वे थे जो बीमारी भोगकर उठे थे।

थोड़ी देर बाद लस्कों के साथ वह सारी भीड़ एक लम्बी और इकहरी पंक्ति में गाँव के बाहर निकल गई। जंगल में एक निश्चित स्थान पर लकड़ी का

चौड़ा बलिदान स्थल बनाया गया था। वहीं देवियों सहित सारी भीड़ रुकी, एक-के-बाद एक लोग देवी के सामने आते गए और बलिदान होता गया—पहिले वे जो बीमारी से उठे थे और फिर दूसरे लोग···।

बलिदान का यह सिलसिला लगभग घंटे भर तक चलता रहा और कुल मिलाकर पन्द्रह सूअर, दस बकरे, दर्जनों मुर्गियाँ, बीसियों अंडे, नारियल तथा ढेर-सी शराब भेंट-स्वरूप चढ़ाई गई।

मुझे याद है लौटते में कई लोग नशे के मारे बहकने लगे थे। घोटुल में आकर और भी शराब पी गई और उस समय तक बक-झक चलती रही जब तक कि उसी घोटुल में पकाडे के लिए जुटी औरतों ने खाना तैयार न कर दिया—निश्चय ही उसके बाद एक विराट सामूहिक भोज का आयोजन था। ऐसा जिसमें बच्चे से लेकर बूढ़ों तक ने खूब छककर खाया और जी भर कर पी।

रात बड़ी देर तक नशे का प्रभाव सारे गाँव पर बना रहा सिवाय एक अभागे पीरचे के जिसका बच्चा अचानक उसी रात मर गया।

कहते हैं ज्ञान के साथ सहनशीलता आती है और साधारणतः वही आदमी मोह के प्रति अनासक्त व निर्विकार होता है जिसे कहीं अंतर्दृष्टि प्राप्त है। अबूझमाड़ की जंगली जाति के सन्दर्भ में यह बात चाहे जितनी हास्यास्पद लगे, लेकिन पीरचे को देखकर एकाएक मुझे यही लगा था। क्या आदमी अपने दुख के प्रति इस सीमा तक तटस्थ रह सकता है? अपनी आँखों से न देखा होता तो मुझे बिलकुल विश्वास न होता।

बीच वाले आँगन की ओलती-तले दो चार लोगों से घिरा हुआ वह उकड़ूँ बैठा था और निहायत सहज भाव से चोंगी पी रहा था। अगर भीतर से औरतों के सामूहिक क्रन्दन की आवाज़ न आती तो सहसा यह जान पाना ही कठिन था कि हम लोग दुख-घर आए हैं और पीरचे पर वज्रपात हुआ है।

शायद गाँव का सबसे अधिक सम्पन्न, सुन्दर व बड़ा परिवार पीरचे का ही है। पन्द्रह-बीस खेत हैं। कई मूंड मवेशियों के हैं लेकिन उसी अनुपात में बढ़ी हुई जिम्मेवारियाँ भी हैं। जब-जब उसके यहाँ गए हैं, उसके पारिवारिक जीवन का गढ़न देखकर मुझे अपने समाज के सामूहिक हिन्दू परिवारों की याद आ गई है। अगर ओरछा में न होकर वह परिवार हमारे संसार में होता तो कौन कह सकता था कि वे लोग आदिवासी हैं। रंग-रूप चेहरा-मोहरा, किसी बात में नहीं। पहिले-पहल तो मैं हैरान रह गया था—इतना उजला साफ़ रंग और ऐसे तीखे नाक नक़्श तो हमारे यहाँ भी नहीं।

चुपचाप जाकर हम लोग मातमपुर्सी करने के अंदाज में बैठ गए तो एक

बार हमें देखकर पीरचे मुस्कुराया हालाँकि उसकी मुस्कुराहट की लकीरें होठों पर इतनी हल्की थी कि सतही आँखों से देखना असंभव था।

—"यह सब अचानक कब हो गया ?" कुछ देर बाद एड ने धीरे से कहा—"मुझे बड़ी रात गए खबर मिली कि···।"

अधजली चोंगी को जमीन की रगड़ देकर पीरचे नीचे ही नीचे देखता रहा। कुछ देर उसके गले से आवाज़ ही नहीं निकली फिर वह खखारकर गला साफ करने लगा।

—"कल शाम को दिया-बत्ती के वक्त···" उसके पास बैठे एक आदमी ने जवाब दिया—"हम लोग तो यही समझते रहे कि मामूली बुखार है, ठीक हो जाएगा। अब कौन जानता था कि इतनी जल्दी···"

भीतर से बड़े जोरों का क्रन्दन फिर उमड़ आया—यह शायद बच्चे की माँ थी। दोनों पाँव फैलाए, बाल बिखेरे हुए वह छाती कूट-कूटकर रो रही थी और संवेदना प्रकट करने तथा मातम करने वालियों ने उसे चारों ओर से घेर रखा था।

पीरचे सूखी आँखें तथा पत्थर जैसा मन लिए दूर एक ओर देख रहा था, जैसे-तैसे स्वर में बोला—"सब थक गए, पेपी। दवा-दारू, देव धामी, सभी। भाग्य की बात है···।"

मैंने देखा, एड के चेहरे पर झुँझलाहट भरे कुछ भाव आए। शायद वह कुछ कहना चाहता था, लेकिन किसी विचार के कारण रुक गया।

मृत बालक पीरचे की इकलौती संतान था—बड़े अरमानों के बाद अधेड़ उम्र में प्राप्त एक ही लड़का, जो कठिनाई से तीन चार साल का ही होगा। पीरचे से जब भी घर में भेंट हुई है, बच्चे से अलग मैंने उसे कभी नहीं देखा। जब भी पाया उतने बड़े बच्चे को गोद लिए, खिलाते-पिलाते, उसका कोई हठ पूरा करते अथवा उसके साथ खुद किसी खेल में तल्लीन·· ।

दो-तीन दिनों पहिले वह एड के पास दवा लेने आया था और एड ने मलेरिया की कुछ टेबलेट्स दी थीं। उसके बाद फिर पीरचे नहीं आया। मुझे याद आया कि पिछली रातों में लस्के के ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने की जो आवाज़ आती रही, वह इसी अभागे बच्चे के लिए होगी।

—"लाश अभी तक क्यों रोक रखी है ?" एड ने किसी दूसरे से पूछा—"क्या किसी की राह देखी जा रही है ?"

—"हाँ। पास-पड़ोस के गाँवों से कुछ रिश्तेदार आने को हैं। उनके बिना क्रिया-कर्म कैसे होगा ?"

थोड़ी देर बाद उस आँसूसने वातावरण से मैं बाहर निकल आया। लगातार क्रन्दन व मातम-भरे माहौल में देर तक चुप बैठकर टुकुर-टुकुर ताके चले जाना कितना मायूब लगता है।

दोपहरी चढ़ रही थी। पड़ोस के वन में बनरामियों, सुग्गों व हरियल का शोर गूँज रहा था, ढलवान के मैदान में चर रही मवेशियाँ थककर पेड़ों के नीचे आ गई थीं। धूप के रेशे मोटे तौर पर गाढ़े हो रहे थे जिसमें सनी केवल आवाज़ सबसे प्रमुख थी—वही कठफोड़वा की अनवरत कट्-कट् और रह-रहकर पंडकी का बोलना···।

फिर दोपहरी भी ढल गई लेकिन जिनकी प्रतीक्षा थी वे लोग नहीं पहुँच सके। चूँकि चौबीस घंटे होने को जा रहे थे अतः अन्त में सबके आग्रह से लाश उठी। छोटी-सी अर्थी की श्मशान-यात्रा जिसके लिए अधिक दूर नहीं जाना पड़ा। थोड़े ही फासले पर शाल वन ने स्वागत किया। हरे दरख़्तों की छाँव में बिना घेरे का श्मशान जिसमें ढोरों की सफेद हड्डियाँ व झोपड़े चमक रहे थे।

छोट-सी क़ब्र खुदी, भीतर की मिट्टी पर एक पुराने कपड़े का टुकड़ा बिछाया गया—वही कफन था। माँ की आकाश-व्यापी चीत्कार और पिता की पथराई आँखों के सामने नन्हा-सा शव उतार दिया गया। पश्चिम दिशा की ओर पाँव, ऊपर मैले कफन का चीथड़ा, उस पर शाल पत्तियों समेत छोटी-छोटी डगा-लियों का ढँकाव और फिर मिट्टी पर मिट्टी···।

याद है, सब याद है। यह भी अच्छी तरह याद है कि उसके कई दिनों तक जिधर भी आँखें उठाता वही तस्वीर आकर खड़ी हो जाती—खूब घने और आपस में गुथे ऊँचे शालवनों के बीच एक उभरे हुए दीप की तरह सन्नाटे में एक छोटी-सी कब्र है, आस पास बच्चे के खिलौने, उसके लेटने की चटाई, पलना आदि सारी चीजें फैली पड़ी हैं और चारों दिशाओं की हरी शाल डगालियों पर बँधे लाल तूस के कपड़े हवा में धीरे-धीरे थरथरा रहे हैं।

पाँच

राजरोगी लाली को मैंने पहली बार मासा के घर देखा। कितने आश्चर्य की बात है कि ओरछा में रहते मुझे इतने दिन हो गए थे, प्रायः अधिकांश लोगों को मैं पहिचानने लगा था लेकिन एक - लाली ही बचा रह गया। वही, जिसके घर मैं सबसे पहिले-पहिल गया था और जिसकी चर्चा ने अनदेखे ही उसके प्रति मेरे मन को द्रवित कर दिया था। फिर रेको के प्रसंग में जैसी आत्मीयतापूर्वक एड ने उसे एकाध बार याद किया था, संभवतः उसके कारण भी लाली को देखने की उत्सुकता हुई थी। पर उस दिन जिस शिद्दत से उसके लिए करुणा उमड़ी थी उसी शिद्दत से वह दब गई और शायद मैं भूल-भाल गया। संभव है उसका एक कारण यह हो कि उससे भी अधिक दूसरी करुणाएँ मुझ पर छा गईं थीं या शायद उससे मिलने का ही अवसर नहीं आया। अवश्य गाँव के उत्सवों में वह रहा होगा लेकिन मैंने ध्यान नहीं दिया।

—"उसे पहिचानते हो ?" बाहर मासा की वाड़ी के पास ही ठिठककर एड ने पूछा। उसका संकेत उस युवक के लिए था जो इधर पीठ किए मासा के पास उन्हीं के घर-आँगन में बैठा हुआ था। मैं थोड़ी देर उन लोगों की ओर देखता रहा और तब तक मैंने जवाब नहीं दिया जब तक कि वाड़ी और आँगन की आधी राह तय हो गई। मासा के सामने बड़े-बड़े घुँघरुओं का एक ढेर पड़ा था, कुछ मुर्गी और मोर के पंख भी आसपास फैले हुए थे और चमड़े की एक चौड़ी पट्टी हाथ में लेकर वह कुछ गूँथने में व्यस्त था।

—"याद नहीं ?" एड ने कहा—"तुम्हारे यहाँ आने के दूसरे दिन ही हम लोग केये नामक एक आदमी के यहाँ गए थे ?"

—"वही जो चटाई-अटाई बुनता है और..."

—"हाँ, बिल्कुल वही। मेरा ख़याल है कि तुम्हें अब रेको की याद दिलाना नहीं पड़ेगा..."

इतने में मासा के पास बैठे युवक ने गर्दन फेरी और जैसे ही हम लोगों को आते देखा थोड़ा खिसककर बैठ गया। उस एक झलक के बिना कुछ कहे बताए

अचानक स्पष्ट हो गया कि रेको का भाई और राजरोगी लाली यही है !

निहायत मामूली क़द, दुवला-पतला शरीर, पिचके गालों वाला ज़र्द चेहरा और छोटी-छोटी निस्तेज आँखें। रंग उसका और दूसरे लोगों की अपेक्षा साफ था और शायद इसलिए भी वह पीला तथा रक्तहीन दिखाई देता था। दूसरे कुँआरे युवकों की तरह माला, मूँगा, कंघी, अँगूठियाँ तथा अन्य प्रकार की सजा-वट उसके शरीर पर कहाँ थी ? गले में लाल रंग की छोटे दानों वाली एक लड़ की माला और कलाइयों में गिलट के घिसे कड़े···

—"कहो लाली, कैसे हो ?" कहता हुआ एड मुझे छोड़कर आगे बढ़ा और मुस्कराकर उसी के पास जा खड़ा हुआ। मासा ने बैठने के लिए एक पीढ़ा सरका दिया पर लाली वहाँ से नहीं उठा। यही नहीं बल्कि एड के मिलने पर हर किसी से जो जोहार का आदान-प्रदान होता था, वह भी लाली से नहीं हुआ। मेरी निकट आती आँखों ने देखा कि एक क्षण के लिए अचकचाकर वह सकुचा-सा गया और आँखें नीची करके चुपचाप हँसने लगा।

—"पेपी, क्या अभी चलना है ?" मासा ने लाली की ओर ध्यान न देकर पूछा।

—"हाँ भाई," एड ने कहा, "मैंने गाड़ी बाहर भी निकाल ली है।"

—"पहिले तो इतने वेर चलने की वात थी न ?" मासा ने आकाश में एक खास ऊँचाई की ओर निर्देश कर, संध्या के चार बजे वाले सूरज का संकेत किया—"मैं तो यही सोचकर यह सब ले बैठा हूँ।"

मासा के सामने छोटे-बड़े घुँघरुओं का ढेर था जिसमें से एक-एक लेकर वह चमड़े की पट्टी में पिरो रहा था। इसके अलावा मुर्ग और मयूर के लम्बे-लम्बे पंख अलग फैले थे। स्पष्ट था कि वह सारी तैयारी नृत्य सम्बन्धी वेश-भूषा की थी। नाच के दौरान कमर में बँधने के लिए बड़े-बड़े घुँघरुओं का झुब्बा और सिर के पीछे पगड़ी में खुँसने के लिए मयूरपंख की झाल !

पिछले दिन मासा के साथ जंगल जाकर कुछ जलाऊ लकड़ियाँ काट लाने की बात थी। घर के उपयोग के लिए लकड़ी खत्म हो चुकी थी अतः एड ने जंगल चलने के प्रस्ताव के साथ मासा को आज शाम का समय दिया था। बिना सूचना के इस अचानक समय-परिवर्तन के लिए उसने कैफियत दी कि शाम को उसे कोई दूसरा जरूरी काम करना है। इसके अलावा शाम-शाम को जंगल काटना अच्छा भी नहीं लगता—सूरज डूबने के पहिले ही लौट आएँ यह बेहतर होगा।

—"तो ठीक है," मासा ने कहा—"मैं चलता हूँ लेकिन यह हाथ का अधूरा काम पूरा कर दूँ नहीं तो सारे घुँघरू इधर-उधर होकर रह जाएँगे।"

—"क्यों ?" इतनी देर अनवरत मौन के बाद मैंने एड से पूछा—"आसपास क्या कोई उत्सव वगैरह होने को है ?"

—"नहीं। अभी तो ऐसी कोई बात नहीं। शायद यह तैयारी काकसार की है।"

काकसार !

मेरी आँखों के सामने अचानक एक तस्वीर आकर खड़ी हो गई—ऐसी तस्वीर जिसका के पास खूब बड़ा है जिसमें असंख्य और अनगिनत बिन्दु हैं। और जिसका हर बिन्दु गतिशील और स्वरमय है। उस स्वर में कितने प्रकार के शोर हैं, कह सकना सम्भव नहीं—ढाल, तुरही, गँवर-सींग आदि की चिल्लाहट के साथ, छोटे-बड़े कई प्रकार के घुँघरुओं का समवेत स्वर—झन्न ! झन्न !! झन्न !!!

तभी लाली झिझकता हुआ उठ खड़ा हुआ और बिना कुछ कहे मासा की ओर अनुमति माँगती आँखों से देखने लगा। मासा ने मुस्कुराकर गर्दन हिला दी और एकाध क्षण बाद लाली वहाँ से चला भी गया।

—"आज लाली कैसे आया था ?" जब वह दूर निकल गया तो एड ने पूछा।

—"क्या बताऊँ ?" कहकर मासा हँसने लगा। कई क्षण वह उसी तरह हँसता रहा फिर बोला—"मुझे कई दिनों से परेशान किए हुए है। कभी घुँघरू लाकर देता है, कभी पंख-वंख और कभी कपड़े। कहता है, काकसार नाच के लिए यह बना दो, वह बना दो। मैं भी उसका मन रखने के लिए हाँ-हूँ कर देता हूँ, आने पर कुछ जोड़-तोड़ भी कर-करा देता हूँ, हालाँकि सभी जानते हैं कि वह बीमार आदमी है, काकसार उसके लिए कोई मानी नहीं रखता।

एड और मैंने एक-दूसरे की ओर अर्थभरी दृष्टि से देखा। जिस बात पर मासा हँस रहा था, वह क्या हँसी के लायक थी ?

—"और इन सब का यह करता क्या है ?" मैंने पूछा।

—"करेगा क्या। पिछले साल तो बीमारी के कारण उठ भी नहीं सका। इस साल क्या होता है, कौन जाने। ज्यादा-से-ज्यादा यह होगा कि नाच के कपड़े पहिनकर या सजधजकर आ जाएगा और कहीं खड़ा होकर चुपचाप दूसरों को देखता रहेगा। जो आदमी ठीक से चल फिर नहीं सकता उससे···

पास के खंभे से टिककर मैंने धीरे से आंखें मूँद लीं हालाँकि बन्द पलकों में भी जो आकृति रह-रहकर उभरी आ रही थी वह लाली की ही थी। देखता हूँ कि अबूझमाड़ के सर्वाधिक लोकप्रिय, महत्वपूर्ण व चिर-प्रतीक्षित शृंगार-पर्व काकसार का एक विराट आयोजन ओरछा में हुआ है। दूर-दूर से लोग आए हैं, असंख्य युवक-युवतियों के जोड़े शराब के नशे में धुत नाच रहे हैं। ऐसा नृत्य जिसमें एक स्टेप के सिवाय गति कोई नहीं। नितान्त अकलात्मक, नीरस व उबा देने वाला, लेकिन उससे अधिक उल्लास देखने में कहीं और नहीं है। पूरे चाँद की

धवल चाँदनी सब-कहीं यकसाँ फैली है और जहाँ कहीं पेड़ खड़े हैं उनके नीचे छिदरी-छिदरी व चितकबरी छाया निःस्वर पड़ी है—चुपचाप व अपलक निहारती-सी।

उन्हीं छायाओं में से एक पर मेरी निगाह अचानक ठिठक जाती है। देखता हूँ कि नृत्य की भरी-पूरी पोशाक में अपनी कमज़ोर व धक-धक करती देह को छिपाए लाली मौन खड़ा है—अविचल व निःशब्द! उसकी आँखें कभी इस नृत्य-रत जोड़े पर ठहरती हैं, कभी उस पर। कुछ देर वह जाने कैसी करुण व पिपासित आँखों से ताकता रहता है फिर लौटकर अपनी विवश व असहाय शरीर को देखने लगता है।

रेको वहाँ कहीं नहीं है—किसी अँधेरे कोने में भी नहीं। संभवतः उस सारे वातावरण से अलग व दूर अपने घर के अँधेरे कोने में औंधे मुँह लेटी है और दोनों हथेलियों से कानों को ऐसे मूँद रखा है कि यहाँ कोई भी स्वर भटककर उसके कानों तक न पहुँचे।

लाली देखता है। लेकिन नहीं देखता। देखता है कि एक-एक करके उसके सारे साथी लड़कियों ने चुन लिए, नाचते-नाचते किसी दूसरे का उन्हें ध्यान नहीं रह गया है—शराब, नशा और नशा! चाँदनी कभी मद्धम, कभी तेज़ हो जाती है और उस धुँधलाई-धुँधलाई रोशनी में कई जोड़े धीरे-से झाड़ियों की ओर खिसक जाते हैं। नहीं देखता कि पेड़ों के नीचे की छिदरी छायाएं हलकी-हलकी होकर क्षण-भर के लिए मिटने-सी लगती हैं—झाड़ी-ओट की कच्ची डगालियों व छोटी पत्तियों वाली घास की नसों में महुए वाली शराब की तेज़ गंध लिपटने लगती है, क्षण-दो-क्षण बाद कुछ जोड़ों की सम्मिलित व दबी-दबी हँसी झाड़ियों में महक जाती है और फिर लम्बी-लम्बी उसाँसें अथवा थकी, श्लथ व थरथराती हुई कई निश्वास हवा से इधर बहक आती हैं..."

जैसे ऋतुओं में वसंत कईयों के घाव करता है, लाली, रेको जैसे लोगों को अधमरा करने के लिए वैसे ही अबूझमाड़ में काकसार आता है—शृंगार-पर्व काकसार, जिसको प्रतीक्षा वर्ष भर की जाती है। ऐसा पर्व जिसमें प्रेमी तथा प्रेमिकाओं का उन्मुक्त मिलन होता है। इस अवसर पर कई अपरिचित तथा अजनबी युवक-युवती निकट आकर एक-दूसरे को पसन्द करते हैं और उनके बीच भविष्य में सुदृढ़ होने वाले प्रेम की नींव पड़ती है। यहीं पर अधिकांश विवाहों की भूमिका बनती है लगभग नब्बे-फी सदी दाम्पत्य जीवन का सूत्रपात भी यहीं से होता है।

लेकिन काकसार क्या केवल शृंगार और समागम का ही त्यौहार है? क्या उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण यह गोत्र देव-पूजा और आस्था का परम्परावादी पर्व नहीं है जिसके माध्यम से उनके वर्ष भर की एकरसता टूटती है और उत्साह व उमंग लौटता है?

अबूझमाड़ में प्रमुखतः पहाड़ी माड़िया नामक एक जाति बसती है। यह जाति कई गोत्रों या वंशों में बँटी हुई है जिन्हें नृतत्वशास्त्रीय शब्दावली के अनुसार 'क्लेन' अथवा 'सिब' कहा जाता है। इन शब्दों की गूढ़ परिभाषा में न जाकर यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि आदिम जातियों के सन्दर्भ में गोत्र नातेदारी की इकाई माना जाता है। ऐसे सारे लोग जो किसी एक पूर्व-पुरुष के वंशक्रम से आते हैं (प्रत्यक्षतः अथवा पौराणिक कथा के रूप में सम्बन्ध) आपस में रक्त सम्बन्ध मानते हैं और इनका गोत्र एक होता है।

जैसा कि स्वाभाविक है, कि इन गोत्रों का माड़िया समाज में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि शादी-ब्याह गोत्र के अनुसार ही होता है। इस माड़िया समाज में एक व्यक्ति अपने ही गोत्र की किसी लड़की से कभी ब्याह नहीं कर सकता। साधारणतः एक गोत्र के लोगों का एक ही गोत्र-देवता होता है जिसकी पूजा की जाती है और आपस में उनकी एकता का प्रतीक भी वही है। उदाहरण के लिए मैं यहाँ ओरछा गाँव को ही लेता हूँ जहाँ 'उसेन्डी' नामक एक माड़िया-गोत्र का आधिक्य है। उसेन्डियों का गोत्र-देवता है 'देवान' और देवान का मंदिर गाँव के बाहर एक जंगल में बसा हुआ है। मंदिर की स्थिति महत्वपूर्ण है। गाँव के बाहर इसकी स्थापना इस बात का प्रतीक है कि यह गाँव का नहीं है। यह गोत्र-देवता है ग्राम-देवता नहीं। अन्य गाँवों के उसेन्डी भी समय-समय पर इसी मंदिर में आकर पूजा करते हैं।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि अन्य कई ऐसे गोत्र हैं जो किसी पौराणिक कथा के आधार पर इस उसेन्डी गोत्र से जुड़े हुए हैं और उनके सदस्य भी देवान पर आस्था रखते हुए उसकी पूजा करते हैं। ऐसे समस्त गोत्र जो एक दूसरे की नातेदारी पर विश्वास करते हुए आपस में सम्बद्ध हैं, 'दादा-भाई-गोत्र' कहलाते हैं। दूसरे गोत्रों का समूह जिनके सदस्य उसेन्डी दादा-भाई-गोत्र से सन्बन्धित नहीं हैं, 'आकोमामा' कहलाते हैं (आको अर्थात् नाना और मामा यानी माँ का भाई)। एक व्यक्ति न केवल अपने गोत्र की किसी लड़की से ब्याह नहीं कर सकता वरन उसका ब्याह उन समस्त लड़कियों से भी वर्जनीय माना जाता है जो उसके गोत्र के दादा भाई गोत्र हैं। अवश्य उसका ब्याह केवल आको-मामा-गोत्र की किसी लड़की से हो सकता है। इस तरह उसेन्डी, गुता, वड्डे, कोरे, इरकिटी, कोये तथा नाचोर गोत्रों सदस्य एक दूसरे के दादा भाई हैं और उनमें ब्याह वर्जनीय है जबकि वे पटावी, द्रुवा, कोला, हाकर, वड्डी, करमे, गचा, बरपा, नोनेर तथा नीरा गोत्रों में किसी से भी ब्याह कर सकते हैं। ये सारे प्रथम समूह के आको-मामा हैं। इन दोनों गोत्र के समूहों को अर्धांश कह सकते हैं कारण कि ये अपने आप में असम्पूर्ण हैं और ब्याह के लिए इन्हें एक दूसरे का सहारा लेना ही पड़ता है।

येल यूनिवर्सिटी के नृतत्वशास्त्री सी० पी० मरडॉक ने क्लेन की जो परि-

भाषा दी है उसके अन्तर्गत एक गोत्र की कड़ी सीमाएँ निर्धारित हैं। उसके अनुसार उसेन्डियों का उत्सव केवल उन्हीं का होना चाहिए जबकि देवान की पूजा न केवल उसेन्डी गोत्र के लोग करते हैं बल्कि सारा गाँव, जिसमें कई गोत्र के लोग होते हैं, मानता है। समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि देवान की अहमियत धीरे-धीरे गोत्र-देवता की हैसियत से कम होती जा रही है और वह ग्राम-देवता बनता जा रहा है। न केवल यही बल्कि एक देवता के आधार पर पहिले दो गोत्र-समूहों में जो संयुक्तता थी, वह भी धीरे-धीरे टूटती जा रही है।

लगता है, जैसे इन दोनों गोत्रों में वैवाहिक सम्बन्ध को संकेत द्वारा निरूपित करने के लिए ही देवान का ब्याह आडेर गाँव के जूरा तथा तोंदेबेड़ा के नीरा और बरवा गोत्रों की देवी 'करमाबेला' से किया गया है। इसी तरह देवान के दोनों बड़े भाई—गुता के पयकोल तथा वड्डे गोत्र के हन्गोमुइतो उन सारे समूहों द्वारा पूजे जाते हैं जो कि उसेन्डी के दादा भाई हैं। इन विभिन्न देवी-देवताओं की माड़ियों के विभिन्न उत्सवों में वर्ष भर पूजा होती है लेकिन उन सारे पर्वों में काकसार अत्यन्त विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण है!

गर्मियों के अन्त तथा वर्षाकाल के पूर्व यह त्योहार तब शुरू होता है जब नई फसल के लिए बीज डालने का मौसम आ जाए—वस्तुतः बोनी से पहिले एक महान उत्सव के रूप में यह मनाया जाता है और इसके बाद ही गाँवों में ब्याहों का सिलसिला प्रारम्भ होता है। काकसार की कोई एक ही निश्चित तिथि नहीं होती। प्रत्येक गाँव का काकसार हर दूसरे से भिन्न तारीख को रखा तथा मनाया जाता है। दरअसल, यह वह अवसर है जबकि अच्छी फसल के लिए गोत्र-देवता की प्रार्थना की जाती है, और उसे हर तरह से प्रसन्न किया जाता है। उस देव को जो परम्परा के अनुसार ग्रामदेवता से अधिक महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली माना जाता है।

यों इस उत्सव की रूपरेखा बड़ी सीधी-सादी है।

काकसार से एक रात पहिले इरपानार गाँव के लोग पयलोक देव (देवान का बड़ा भाई) को लेकर ओरछा आते हैं। देवान के मंदिर में एकत्रित प्रत्येक परिवार के एक-एक प्रमुख तथा कुछ नवयुवकों के झुण्ड अतिथि देव का स्वागत करते हैं। उसी रात देवान के दूसरे बड़े भाई हन्गोमुइतो को भी गुमियाबेड़ा गाँव से लाया जाता है। दोनों देवों के सामने एक मुर्गी की बलि दी जाती है। लोग अच्छी फसल के लिए देवों से प्रार्थना करते हैं और नगाड़े की तेज़ ध्वनि के बीच एक सामूहिक भोजन होता है। इसी अवसर के लिए नई फसल का अनाज एक जगह पहिले से जमा किया जाता है। गाँव वाले दस्तूर के अनुसार देवों के लाने वाले अतिथियों को विशेषकर यही अनाज खिलाते हैं।

दूसरे दिन पयकोल तथा हन्गोमुइतो को स्नान के लिए माड़िन नदी ले जाया जाता है। यहाँ फिर कुछ नवयुवक, देवों का स्वागत-सत्कार करते हैं। जैसे ही देव नदी के निकट पहुँचे कि ऊँचे स्वर में ज़ोर-ज़ोर से नगाड़े बजाए जाते हैं। नदी में आदरपूर्वक मुँह धुलाने, नहलाने तथा मयूरपंखों से उनकी पूरी सजावट करने के बाद ये दोनों देव गाँव के मध्य में लाकर रखे जाते हैं जहाँ विशेषकर एक खंभा गड़ा होता है। इसी स्थान पर देवान को भी लाया जाता है और थोड़ी देर बाद कुछ लस्कों के शरीरों में देव प्रवेश करते हैं। वहाँ पत्थर की बलिवेदी पहिले से तैयार होती हैं। देव जिन-जिन बलियों की, मसलन, मुर्गी, सूअर, बकरे आदि की माँग करते हैं तुरन्त मान लिया जाता है। पत्थर की उसी बलिदेवी पर चाँवल के दाने चढ़ाकर बलिदान की विशेष छुरी से कई जानवरों की बलि दी जाती है। पिछले बरसों में जिन्होंने मिन्नतें की थीं और जिनकी आरज़ुएँ बर आई थीं, उनकी ओर से बलिदान अलग होते हैं। तत्पश्चात्, मातादाई (जो देवान के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण देवी मानी जाती है) के मंदिर में भी कुछ बलियाँ देने के बाद सब वापस आते हैं। सारे लोग छोटे-छोटे समूहों में बँटे होते हैं और खूब शराब पी जाती है। थोड़ी देर बाद घर लौटने पर सारे गाँव में विभिन्न फसलों के अनाज के साथ बलिदान का माँस खूब तृप्त होकर खाया जाता है।

लगभग तीसरे पहर लोग फिर उसी खंभे के ईर्द-गिर्द जमा होते हैं जो गांव के मध्य गड़ाया गया था। लस्कों की देहों में पुनः देव प्रवेश करते हैं और देवों का नृत्य आरम्भ होता है। बड़े-बड़े नगाड़े, घंटे और घुंघरुओं के शोर में खोए हुए देव बड़ी देर तक नृत्य करते हैं और बीच-बीच में वे अनेक दर्शकों के माथे पर आशीर्वाद स्वरूप लाली के टीके देते चलते हैं। कुछ देर बाद देव आराम करने के लिए घोटुल पहुँचा दिए जाते हैं।

इस समय तक दूसरे गाँवों के लोग भी पहुँचने लगते हैं। काकसार नृत्य में भाग लेने वाले चाहे दो-चार ही हों, देखकर आनन्द लेने वाले अनेकों होते हैं।

अँधेरा होते-होते नर्तकों की तैयारियाँ शुरू होने लगती हैं। नृत्य की पूरी वेशभूषा में सजने के लिए प्रत्येक नर्तक अधिक से अधिक समय लगाता है। नाच की पूरी पोशाक पहिनना, गले में माला-मूंगों का ढेर, सिर की पगड़ियों में मयूर अथवा मुर्ग-पंखों की सजावट और कमर के पीछे बड़े-बड़े घुंघरुओं की ऐसी कसावट कि नाच के दौरान अधिक-से-अधिक ज़ोर से झन्न्-झन्न् की आवाज़ हो। इस तैयारी में हर नवयुवक एक-दूसरे की सजावट के लिए पूरी सहायता करता है बावजूद इसके कि हर एक को दूसरे से होड़ होती है। काकसार की सबसे बड़ी विशेषता तथा विचित्रता यही है कि वहाँ आकर्षण का केन्द्र युवक होता है, युवती नहीं। नृत्य के दौरान प्रत्येक नर्तक इसी बात पर प्रयत्नशील रहता है कि ज्यादा-से-ज्यादा आकर्षक वही दिखे ताकि युवती ही आकर्षित होकर पास चली आए,

नाच के लिए उसके संग की कामना करे।

अन्त में, एक-एक करके अलग-अलग समूह नृत्य के लिए आते हैं और जब तक कि नृत्य शुरू हो, आकाश में पूरा चाँद खूब निखर जाता है। पहिले नर्तकों का दल अर्द्धचन्द्राकार घेरा बनाकर नाचता है, युवतियाँ उनसे अलग थोड़ी दूर पर नाचती हैं लेकिन कुछ देर बाद एक एक करके युवतियाँ छँटकर युवकों के पास खिचती चली जाती हैं। सारी रात नाच उसी एक गति व उत्साह से चलता रहता है। बीच-बीच में कुछ जोड़े एक-दूसरे की अनुमति से झाड़ियों की ओट चले जाते हैं···।

काकसार का यही परिचय तथा उन्मुक्त मिलन अकसर आगे चलकर विवाह में परिणत हो जाता है। कई बार नाच के बाद युवक युवती को सीधे अपने घर ले जाता है और ऐसी परिस्थिति में 'एक-देसीना' नामक एक विशेष प्रकार का व्याह होता है। इसमें वर-वधू दोनों छप्पर के नीचे खड़े कर दिए जाते हैं और ऊपर से सिरों पर जल उलीचकर उन्हें परिवार में पति-पत्नी की तरह स्वीकार किया जाता है।

वास्तव में काकसार एक साधारण पर्व ही नहीं, माड़िया युवक के जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण अवसर है जिसकी वर्ष भर प्रतीक्षा की जाती है। काकसारों का जो दौर चलता है तो अधिकांश युवा समुदाय अपने गाँव में नहीं मिलता। नवयुवक तथा नवयुवतियों के झुंड-के-झुंड एक गाँव से दूसरे गाँव की ओर बढ़ते चले जाते हैं और पीछे छोड़ जाते हैं उजड़े हुए मेले के इक्के-दुक्के चिन्ह और वातावरण में घुँघरुओं, पदचापों और गतों का ऐसा समवेत स्वर जो सन्नाटा पड़ने के बाद भी देर तक गूँजता रहता है···।

हार्न की आवाज़ से अचानक चौंककर मैंने देखा कि एड की जीप ट्रॉली समेत आकर सामने ही खड़ी है, मासा ने अपने सारे सामान समेट धर लिए हैं और केवल मेरे उठने की प्रतीक्षा की जा रही है।

अचानक मैं फौरन उठ गया तथा हौले कदम उठाता व मुस्कुराता हुआ जीप की ओर बढ़ा। तब भी कोई मुझसे पूछता तो? क्या मैं कह सकता था कि लाली की बीमार, करुण और असहाय आँखों की चुभन को अपने अन्तर से मैंने निकालकर अलग कर दिया है? अपने भीतर मैंने बहुत हल्की-सी हरकत दी, भीतर कुछ मुबहम-सा ख़्याल आया और उस एक जुमले को लादते हुए मैंने सोचा—हम लोग लकड़ी काटने शालवन जा रहे हैं।

छः

अक्सर शामें हमारी एक तरह की होतीं। सूरज डूबने के पहिले ही हम लोग सलपी पेड़ तक चले जाते और वहाँ से लौटते तक साढ़े सात-आठ बज जाते। एड का शोध-कार्य लगभग समाप्त हो चुका था अतः यों भी कुछ बेफिक्री थी। प्रायः खाते-पीते दस बज जाते कुछ तो इस कारण कि खाने की मेज पर कई तरह की बातें निकल आतीं—कभी हिन्दू धर्म, दर्शन या राजनीति की, कभी अमरीकी जीवन, वहाँ की समानता उनकी सुख-सुविधा की अथवा भारतीय जीवन के अभावों व मध्यवर्गीय समस्याओं की। धर्म की चर्चा हो या कला की एड ने अपने उदार विचारों से मुझे सदैव प्रभावित करके यह सोचने के लिए विवश कर दिया कि विचारों की ईमानदारी, साफगोई व खुलापन आदमी को कभी छोटा नहीं बनाता।

उन्हीं लोगों को देखकर मैंने जाना कि सहिष्णुता, उदारता, त्याग, दया आदि गुणों को भारतीयों की विरासत कह-कहकर चाहे हम जितने गौरवान्वित होते रहें, हम लोगों के वास्तविक जीवन में इनका अभाव ही है। लगता है धन से ही नहीं, हम मन से भी दरिद्र हैं और हमारी स्थिति बहुत कुछ दफ़्तर के उस क्लर्क की तरह है जो हीनभाव-ग्रसित होने के कारण बार-बार इस बात की याद दिलाता है कि वह खान्दानी बाबू नहीं है। उसके घराने का सारा अतीत अत्यन्त गौरवशाली है। दादे-परदादे से लेकर पिता तक ने बड़ी-से-बड़ी अफसरी की है और वह तो भाग्य है कि···। क्या इसी पुर्नजागरणवादिता ने हमें निष्क्रिय और खोखला नहीं बना रखा है? अपने गौरवमय अतीत के मद में चूर हम शौर्य-पराक्रम और साहस की चाहे जितनी बातें करें, वास्तव में हमारे अपने स्वभाव में साहस कितना जुड़ा है?

जगदलपुर के डाक बंगले में जिस दिन एड से पहिले-पहल परिचय हुआ उस दिन भी मैंने यही सोचा था। माध्यम थे 'ट्राइबल-इन्स्टिट्यूट ऑफ़ छिन्दवाडा, के रिसर्च-आफिसर व मेरे मित्र श्याम कालिया। स्पष्टतः हम लोगों ने कुछ नहीं कहा लेकिन एड के जाने के बाद हमारी उन गोल-गोल व मुबहम-सी बातों में वही क्षोभ था। मैंने कालिया को अपने एक आर्यवंशीय मित्र के बारे में बताया था।

मित्र महोदय मध्य प्रदेश वासी हैं। बस्तर से बहुत अधिक दूर भी नहीं रहते। नृतत्वशास्त्र सम्बन्धी शोध-कार्य के लिए बस्तर आना चाहते थे लेकिन मुझे बार-बार लिखने के बाद भी एक अरसे तक केवल इस डर से नहीं आए कि पता नहीं यहाँ पानी-वानी मिलता भी है या नहीं और शायद उनसे ऐसा कष्ट-साध्य कार्य न हो। इस उदाहरण के परिप्रेक्ष्य में एड को देखना कितना आनन्ददायी लेकिन साथ ही कितना क्षोभकारी था!

"तुम बेड-टी नहीं पीते ?" एक दिन अचानक एड ने मुस्कुराते हुए मुझसे पूछा था। पहिले मैं समझ नहीं पाया इसलिए 'क्यों' कहकर रह गया।

"यहाँ के अधिकांश लोगों में यह पि जाती है कि नहीं ?" उसने कहा—"भारत आने के बाद जितने भी भारतीय मित्रों के यहाँ ठहरने का अवसर मिला है, यह विपत्ति मुझ पर भी आती-आती बची है।

"तुम 'साहब' लोगों की बात कर रहे हो,'' मैंने हँसते हुए जवाब दिया—"और तुम जानते हो कि मैं साहब नहीं हूँ।"

"लेकिन साहब लोग क्या भारतीय नहीं हैं ?" एड ने उसी स्वर में कहा—और मुझे चुप हो जाना पड़ा। लगा, एड ने किसी गलत जगह मुझे पकड़ लिया है। बेड-टी का चलन अंग्रेजों के साथ भारत आया था। अब अंग्रेज़ नहीं हैं लेकिन समाज के कई वर्गों में यह मानसिक गुलामी अभी भी ज्यों-की-त्यों है। यह बात कालिया कहते या अन्य कोई भी भारतीय मित्र कहता तो शायद मैं भी हँसी में शामिल हो जाता लेकिन चाहने पर भी वहाँ हँसी नहीं आई क्योंकि एड विदेशी था। कोई हमारे भौतिक अभाव के प्रति सहानुभूति प्रकट करे यह भले हमें मान्य हो, यह कतई गवारा नहीं होता कि हमारी बुद्धि पर तरस खाया जाए—लगा मेरे भीतर का ऐसा ही कोई भारतीय अहं आहत हो गया है।

ऊपर से हँसकर मैंने कहा—"उसमें ऐसी बुराई क्या है ? क्या केवल यही कि अमरीकी न होकर वह अंग्रेज़ी चलन है ?"

"यहाँ चलन की राष्ट्रीयता न देखी जाए वही बेहतर है।" एड ने कहा—"अगर उस दृष्टि से देखना भी हो तो इसी छोटी-सी बात से दोनों देशों के जीवन व उनके बीच के मूलभेद को समझा जा सकता है। क्या कोई भी आदत व्यक्तिगत स्वभाव का एक अंग नहीं होती ? क्या स्वभाव से चरित्र नहीं बनता और इसी चरित्र के अनुसार क्या देश और राष्ट्र का मिजाज़ नहीं ढलता ? अंग्रेज साम्राज्य-वादी जाति के लोग हैं—एक हद तक विलासित व ऐश्वर्यप्रिय, उनके बीच इस आदत को समझा जा सकता है। अमरीकी जाति के यह मुआफ़िक नहीं आ सकता क्योंकि जन्मतः वह संघर्षशील हैं और ऐसी छोटी-छोटी विलासिता के लिए औसत अमरीकन को समय नहीं। भारतीय जीवन में भी क्या यही दूसरी स्थिति नहीं घटनी चाहिए ? बात चाय पीने या न पीने की नहीं, ऐसे अनुकरण की है जो हर

लिहाज़ से निकम्मी व फिजूल है···।

मैंने एक सिगरेट निकालकर सुलगा लिया और खूब गाढ़े धुएँ की कई परतें अपने चेहरे पर ढाँक डाल लीं।

बहुत पहिले बीच में एकाध सप्ताह के लिए दोनों पति-पत्नी रायपुर गए थे। वहाँ एक भारतीय मित्र आग्रह के साथ उन्हें अपने यहाँ लिवा ले गए। मित्र महाशय दक्षिण भारतीय थे और केन्द्रीय सरकार के खासे बड़े अधिकारी—एड-फिलिस को वहाँ किसी प्रकार की कोई असुविधा नहीं हुई। अलबत्ता मित्र महाशय के अतिथि-प्रेम, उदारता, सेवा-भाव आदि की वे लोग अकसर प्रशंसा किया करते थे सिवाय उस एक बात के जो उनके लिए अचरज और हँसी की बात हो गई थी।

''तुम मेरी बात का अविश्वास तो न करोगे,'' एड ने स्वयं कहा था—''वे दक्षिण भारतीय सज्जन हृदय के इतने अच्छे साबित हुए कि हम लोग हमेशा उन्हें याद रखेंगे। उनका प्रेम और सौहार्द्र क़तई भूलने की चीज़ नहीं लेकिन जानते हो हमें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह इतने 'बेचारे' हैं। चपरासी, रसोइये, माली व नौकर-चाकर मिलाकर कुल सात-आठ आदमी हमेशा इनकी मदद के लिए तैयार रहते थे। मैं समझता हूँ, सिवाय खाने के अपने हाथ से वह कोई काम नहीं करते—चीजें वहीं रखी हैं, दो कदम बढ़ाकर ली जा सकती हैं लेकिन उसके लिए भी चपरासी को पुकारा जाता है—क्षण-क्षण में नौकर-चाकर, माली, ड्राइवर या किसी-न-किसी की सहायता के लिए पुकार देख-सुनकर हमें बड़ा आश्चर्य होता था। शायद भारत में अधिक-से-अधिक नौकरों से घिरना सम्मानजनक बात समझी जाती है जब कि अमरीका में ठीक इसका उल्टा होता है। वहाँ ऐसे लोग क्या समझे जाते हैं, मालूम है ? बेचारे और अपाहिज, जिन पर समाज तरस खाता है।

मैं एड की बात पर चुपचाप सोचने लगा। यद्यपि उसने नहीं कहा लेकिन मेरे ही मन में आया कि यह गौरव भी क्या हमने अंग्रेज़ों से नहीं लिया है ?

जैसे नित्य का नियम वही बन गया था।

खाने की मेज़ से उठने के बाद एड बन्दूक लेकर निकल जाता। उस निकलने में एक लोभ विशिष्ट था और वह था चीते का शिकार। प्रायः रोज़ चीते के गाँव में घुस आने, मुर्गी, बकरा या कुत्ता उठा ले जा ने अथवा असफल हमले की ख़बर हम सभी सुनते, लेकिन एड से कभी चीते का मुकाबिला न होता। बड़ी टार्च लेकर गाँव के किनारे-किनारे व छूते-छुआते जंगलों के आस-पास वह दो-दो घंटे भटकता लेकिन सिवाय निराशा के और कुछ हाथ न लगता।

व्यक्तिगत रूप से मुझे शिकार से कोई दिलचस्पी न थी। शायद एक कारण

यह हो कि यह जितने धैर्य की माँग करता है, उसका मेरे यहाँ अभाव है। अँधेरी रात के साँय-साँय जंगलों में भूत-प्रेत की तरह निकल पड़ना और बिना किसी बातचीत के घंटों खाक छानते रहना मुझे ऊबा डालता था। एड के आग्रह पर एकाध बार तो मैंने साथ दिया लेकिन बाद में मैं टालने लगा। अमरसिंह के साथ चाहने या न चाहने का सवाल न था—हर हाल में उसे एड का संग देना ही पड़ता। अतः एड के चले जाने के बाद अकेले कॉटेज में मेरा कोई साथ देता तो वह थी चन्द किताबें या पत्र-पत्रिकाएँ…

पर पढ़ते-पढ़ते अचानक बीच में ही बुरी तरह चौंक पड़ता। शालवनों से घिरी निस्तब्ध रात बन्दूक के धाँय-धाँय की आवाज़ से एकदम कँपाकँपा कर रह जाती। कॉटेज के आस-पास वाले दरख्तों में पाँव-पंख समेटकर सोए परिन्दे हड़-बड़ाकर जग जाते। पहाड़ियों में वह आवाज़ टकराकर इतनी ज़ोर से प्रतिध्वनित होती कि खेतों पर चर रहे जंगली जानवर बिदककर बेतहाशा भागते और लगता जैसे माड़िन नदी की तटवाली रेतीली कगार कहीं-कहीं से लरजकर शांत जल में छप-छप गिर पड़ी है…

मैं अचकचाकर खड़ा हो जाता। जी ऐसे ज़ोर-ज़ोर से धड़कता जैसे कहीं अनिष्ट हो गया हो। मानो कोई विपत्ति का भँवर बढ़ता चला आ रहा हो जिसकी चपेट में थोड़ी देर बाद वह सारा हल्का समा जाएगा।

उसके बाद एड की प्रतीक्षा कितनी लम्बी और उकता देने वाली होती। मैं अधूरी किताब फिर खोल लेता लेकिन आँखें एक पैरे से आगे नहीं बढ़तीं। कान बाहर की पदचाप व आवाज़ सुनने के लिए जैसे मुझे समूचा बाहर निकाल लेते। सोचता कि कोई भी क्षण एक अप्रत्याशित समाचार लेकर मेरे सामने खड़ा हो जाएगा।

पर वह कभी नहीं हुआ। अक्सर बड़ी देर की ऐसी प्रतीक्षा के बाद वास्त-विक क्षण अत्यन्त साधारण व निराशाजनक होता। देखता कि बन्दूक लेकर सामने-सामने एड और पीछे अमरसिंह चले आ रहे हैं। न उत्साह और न प्रसन्नता। ठंडे ढंग से आकर एड खड़ा हो जाता और निराशा भरे स्वर में कहता—"बैड लक! तो पेन्थर एराउण्ड!"

मेरी आँखें अमरसिंह के एक हाथ में झूलती चीज़ की ओर अटक जाती जिसे क्षण-भर के बाद फ़र्श पर फेंक दिया जाता—अभागा खरगोश या एड की ज़बान में डैम रैबिट! नन्हा-मुन्ना-सा शरीर, मटियाले रंग के नर्म बालों वाली गदीली खाल, लम्बे-लम्बे कान, छोटा-सा रक्त रंजित मुँह और स्थिर पुतलियों की गोल-गोल आँखें। अपनी जान लेकर भागने के उसने क्या कम जतन किए होंगे लेकिन केवल एक धाँय की आवाज़ और सारी गतियाँ पत्थर, जड़, सख्त!

कई बार पढ़ते-पढ़ते मेरी आँख लग जाती। न बन्दूक की आवाज़ सुनाई

देती और न एड का वापस लौटना ही मैं जान पाता। सुबह नींद खुलती तो सबसे पहिले भीतर वाले बरामदे की बल्ली से लटकते एक खाल-उधड़े खरगोश के शरीर पर निगाह पड़ती। चीता न आता हो, ऐसी बात नहीं—रात के दो-दो घंटे भटकने और उसकी गंध भी न पाने के बावजूद सुबह नित्य की शिकायत बराबर सुनने को मिलती कि अमुक के यहाँ की अमुक चीज रात जाती रही। कब और किस समय दबे पाँव आकर चीता अपना शिकार उठा ले जाता यह अन्त तक एड नहीं जान पाया। परिणाम यह हुआ कि असफलता का क्रोध-बाँध बाद में कुंठा में परिणत हो गया।

आखिर जब मायूस होकर एड ने रात में भटकना बन्द कर दिया तो इसी बीच की एक सुबह कुछ आशाप्रद समाचार मिला। पता लगा कि पिछली रात पीरचे की एक मादा सूअर को लगभग अधमरा छोड़कर चीता भाग गया। दरअसल, पौ फटने के कुछ ही पहिले यह आक्रमण हुआ था। चीते के पंजे में आते ही मादा सूअर ने चीत्कार करना शुरू कर दिया। तब तक घर के कुछेक लोग जाग चुके थे। शोर-शराबा करने के कारण चीता उसे लेकर भाग तो नहीं पाया लेकिन मादा सूअर लहू लुहान और अधमरी हो गई।

इससे पहिले भी एड के दिमाग में यह बात कई बार आई थी कि एकाध सूअर को गारे में बाँधकर चीते की प्रतीक्षा की जाय। लेकिन लगातार प्रयत्नों के बाद भी इस काम के लिए ओरछा में सूअर पा जाना आसान बात नहीं थी। अधिक-से-अधिक पैसों के बदले भी साधारण माड़िया लोग सूअर बेचना नहीं चाहते। उनके घरों से जवाब मिला कि जो भी दो-चार सूअर उन्होंने पाल रखे हैं, वे बलिदान के लिए हैं—बकरे, बकरियों की तादाद इतनी कम थी कि न होने के बराबर ही था अतः वह योजना पूरी नहीं हो सकी थी।

वह समस्या भी इस समाचार से सुलझती दिखाई दी। पीरचे की ज़ख्मी मादा सूअर चूँकि मर रही थी इसलिए उसे दे डालने में किसी को कोई दर्द न हुआ।

अकेले एड का ही नहीं सभी गाँव वालों का ख्याल था कि अपने ज़ख्मी शिकार के फ़िराक में चीते को फिर आना चाहिए और उसी प्रकार की तैयारियाँ हुईं।

पीरचे के आहाते के पीछे ढलवान थी—ऊबड़-खाबड़ और बेहद कुशादा। उससे लगे हुए एक-दो खेत थे और फिर जंगल शुरू हो जाता था। तय हुआ कि पीरचे के आहाते से लगभग २०० गज़ की दूरी वाले एक छोटे पेड़ पर मचान बनाया जाय, और कुछ दूरी पर ज़ख्मी सूअर को चीते का ग्रास बनने के लिए बाँध दिया जाय। जंगल से जो पगडंडी निकलती थी, वह खेतों के बग़ल से होती हुई उसी पेड़ के नीचे से गुजरती थी और उसी पर पंजों के निशान भी देखे गए थे। मचान कुछ इस तरह बँधवाया गया था कि चीते के आने, सूअर पर आक्रमण करने और लौट-

कर भागने—तीनों अवसरों पर एड को फ़ायर करने की सुविधा हो और किसी भी सूरत में चीता जाने न पाए।

जनवरी का अंतिम हफ़्ता और अबूझमाड़ की सर्दी ! तौबा करने को जी चाहता था। चहारदीवारी और छत के साये में रहने तथा गरम कपड़ों से ढँके-मुँदे होने के बावजूद अँगीठी के बिना बैठा नहीं जाता था। और इसे संयोग ही कहना चाहिए कि पिछली तीन रातों में ऐसी बला की ठंड पड़ रही थी कि बरामदे में निकलने का साहस बड़ी बात मानी जाती। हम लोग सरेशाम कॉटेज में बन्द हो जाते और के बाद दरवाजे, खिड़कियाँ लगाकर एड के कमरे में दुबक जाते।

जब अभागिन मादा सूअर को गारे में बाँधने की बात चल रही थी तो सबसे पहिले मुझे इसी सर्दी का ख़्याल आया था। और लोगों के सामने तो नहीं, अकेले पड़ने पर मैंने एड से कहा तो वह बोला—"तुम नहीं जानते कि उत्साह और रोमांचकारी कामों में कितनी गर्मी होती है। फिर मेरे पास गरम ऊनी कपड़े हैं, कम्बल हैं…"

वही कपड़े वास्तव में कहाँ तक एड का साथ दे रहे हैं, इसका एहसास मुझे तभी हो गया था जब हम लोग घर छोड़कर निकले। एड ने थोड़ी व्हिस्की भी पी ली थी फिर भी अपनी साँस खुद को जमती-सी मालूम होती। कोहरा इतना घना और गाढ़ा होकर पड़ रहा था कि दस कदम दूर की आकृति दिखाई नहीं देती थी।

पीरचे के घर पहुँचते ही हम सब अँगीठी की ओर झपटे और अपनी-अपनी हथेलियाँ सामने करके आग के पास बैठ गए। वहाँ आग के गिर्द पीरचे के यहाँ के अधिकांश युवा-सदस्य घिरे हुए थे—पीरचे का छोटा भाई व्हीले, युवा कोसी पड़ोस की दो-तीन और कुआँरी युवतियाँ तथा स्वयं पीरचे।

कुछ देर के लिए आग का लोभ छोड़कर हटना एड से भी नहीं हुआ। वैसे मचान शाम को ही बाँध दिया गया था। सूअर के बँधने के लिए खंभा, रस्सी आदि की तैयारी भी पूरी थी लेकिन ज़ख़्मी सूअर को दड़बे के पास से हटाकर निश्चित स्थान तक ले जाना ख़ासी बड़ी समस्या थी। बड़ी कोशिश, घेरा-घेरी, चीख़-पुकार और हो-हल्ले के बाद वह काम हुआ। सूअर के गले में रस्सी फँसाकर तथा दूसरा छोर अपने हाथ में लेकर आखिर एड मचान पर जा बैठा तो उस समय रात के ग्यारह बजे थे।

खुले तथा सर्द आकाश के नीचे सिहरकर मैंने एक सिगरेट सुलगा लिया। अंगीठी के गिर्द व्हीले कोसी तथा अन्य युवतियाँ उकड़ूँ सटी बैठी थीं और बात-बात में अकारण हँस रही थीं। कोसी को मैंने दिन की रोशनी में केवल एक बार दूर से देखा था। सिर पर घड़ा लिए वह नदी की ओर जा रही थी और मुझे देखता हुआ देखकर तेज़ी से बढ़ गई थी।

तब भी मैं क्या नहीं चौंका था ? पीरचे चोंगी सुलगाकर उस ओर देख रहा था जिधर मादा सूअर बँधी थी । मचान में बैठकर एड थोड़ी-थोड़ी देर में हाथ की रस्सी को झटक देता और परिणामस्वरूप सूअरनी बुरी तरह कराहकर चिल्लाती । वह आवाज़ इतनी तेज़ तीखी और ऊँची होती कि सारा अँधेरा थर-थराकर रह जाता । ऐसे हर बार कोसी अपनी सहेलियों की ओर और वे सब व्हीले की ओर देखतीं और बेसाख़्ता हँस पड़तीं हालाँकि यों देखने पर उनकी हँसी का कोई भी नुकता समझ में न आता ।

—"ज़रा दूर हटकर बैठ," क्षण-भर बाद कोसी ने अपने बाएँ बैठी सहेली से कहा । वह कोसी के कंधे पर हाथ रखकर लगभग लद-सी गई थी और उसके भार को सहने के लिए कोसी का कंधा न सिर्फ दबता बल्कि उसे एक ओर झुक जाना पड़ता ।

—"क्यों, क्या हो गया ?" उस लड़की ने और सटते हुए सिसकारी भर-कर कहा—"ठंड लगती है !"

—"क्या कहा ?" कोसी ने बनावटी क्रोध वाली मुद्रा से उसकी ओर घूरकर पूछा । सहेली ने वही बात दुहरा दी तो कोसी के होंठ-कोनों पर दबी मुस्कु-राहट धीरे-से फैल गई । दूसरी ओर मुँह मोड़कर वह हँस दी फिर बोली—"तो मैं क्या करूँ ?"

—"चलो, चलकर सोएँ···"

—"मुझे अभी नींद नहीं आ रही," कोसी ने बेपरवाही से कहा—"तुझे ऊँघना आ रहा है तो जाकर सो ।"

—"नहीं, अकेले सोना मुझे अच्छा नहीं लगता !" उतनी बड़ी लड़की ने जैसे ठुनकते हुए स्वर में कहा—"चटाई ठंडी होगी और मुझे···"

व्हीले और अमरसिंह एकाएक ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे । उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर अन्य युवतियाँ भी हँसीं और इतने लोगों के बीच केवल अकेला मैं मूर्खों की तरह ताकता रह गया । मेरे साथ सबसे बड़ा व्यवधान भाषा का था । समझ में कुछ नहीं आ रहा था—न उनकी बातें न मजाक, न हँसी का कारण हालाँकि उनकी हरकतों अथवा चेहरे के हाव-भाव से यह अनुमान मैंने अवश्य लगा लिया था कि कोई अत्यन्त ही मनोरंजक बात छिड़ गई है । ऐसे अवसर पर कोफ़्त क्या स्वाभाविक नहीं ?

—"क्या हुआ ? क्या बात हुई," कहकर आख़िर मैंने अमरसिंह को घेर लिया । अमरसिंह मेरे आग्रह के बावजूद बड़ी देर तक हँसता—सकुचाता रहा । लेकिन बाद में उसने ऊपर की सारी बातें साफ़-साफ़ खोलकर धर दीं तो एकाएक विश्वास नहीं हुआ । फिर जब हुआ तो भीतर से जैसे किलक भरी एक कँपकँपी उभरकर मेरे रोम-रोम में समा गई ।

तभी पड़ोस में खड़े इमली पेड़ के नीचे कोई कुत्ता ज़ोर-ज़ोर से भौंक उठा। क्षण-क्षण में उसकी आवाज़ पहाड़ियों से टकरा-टकराकर गाँव भर में गूँज उठती। पहाड़ी सर्दियों की रात जैसे-जैसे भींगती जा रही थी, कोहरे की परतें वैसे-वैसे गाढ़ी हो रही थीं! क्या ओरछा में आज रात बर्फ़ पड़ेगी?

—"इस कुत्ते की मौत आई है," लगातार भौंकने की आवाज़ से ऊबकर व्हीले ने कहा और 'पिच्च' से एक ओर थूकते हुए उसने होंठ पोंछ लिए। दर-असल, कुत्ता अब इमली की छाँव से ढलवान में उतर आया था और जिधर से सूअर के चीख़ने की आवाज़ आ रही थी, उधर ही मुँह उठा-उठाकर भौंक रहा था।

—"कोसी!" बगल वाली युवती ने अबकी बार धीरे से कोहनी मारी और आग्रह भरी आँखों से फिर उसकी ओर देखने लगी जैसे कहती हो—"चलो न!"

—"ओहो," व्हीले ने उकताई हुई नजरों से देखकर कोसी से कहा—"चली क्यों नहीं जाती। देखती नहीं, वह मरी जा रही है?"

—"मरने दे, मैं तो अभी नहीं उठने की।"

—"क्यों?"

—"मुझे नींद नहीं।"

—"आज नींद को क्या हो गया? और दिन तो खाने के बाद ही झोंके खाने लगती थी।"

—"वह बात और है। हमारे द्वार पर रोज तो मचान बँधता नहीं।"

—"और ये बेचारी लड़कियाँ जो अपने-अपने घर छोड़कर तेरे घर सोने चली आती हैं?"

—"मैं क्या रोकती हूँ?" कहकर कोसी ने बगल वाली सहेली की ओर देखा, हाथ का एक स्नेह भरा धक्का उसके शरीर पर दे मारा और बोली—"यह तो पागल है। जा न, जाकर मर!"

पर इसके बावजूद जब वह लड़की टस से मस न हुई और व्हीले लगातार उसकी सिफारिश करने लगा तो एकाएक हँसकर वह बोली—"इतनी तरफदारी के बदले तुम ही क्यों नहीं चले जाते?...ले जा वो, व्हीले को अपने साथ ले जा। बिलकुल ठंड नहीं लगेगी।"

सुनकर एक ज़ोर की हँसी उभरी। झेंपते हुए व्हीले ने कसकर एक धौल कोसी की पीठ पर जमा दी। वह बगल वाली लड़की इस क़दर लजाई कि सहसा तुनककर उठ खड़ी हुई और अकेली ही सोने के घर की ओर भाग गई। एक-एक, दो-दो क्षणों बाद पीछे-पीछे अन्य लड़कियाँ भी खिसक गईं और हम लोगों के अलावा वहाँ केवल कोसी। अँगीठी के पास बैठी रह गई।

जब कोसी तथा उसकी सहेली की बातों का तरजुमा करके अमरसिंह मुझे बताता जा रहा था उस समय उन लड़कियों की क्या दशा थी ?

मैंने कोसी पर काफी गड़ती हुई आँखें ठहराकर सोचा—"क्या उनमें से हर कोई लज्जा के मारे दोहरा नहीं हुआ जा रहा था ? प्रत्येक युवती हर दूसरे की बगल में मुँह डालकर अपने को छिपा रही थी या अमरसिंह को कोसती निगाहों से तिरछे-तिरछे देख रही थी। विशेषकर कोसी की कनपटियों और गालों में कितना ढेर खून उतर आया था—जैसे सेमल या जस्मीन का हल्का-फीका रंग घुल गया हो। मैं बिल्कुल भूल नहीं रहा—उसी दौर में अपनी मछली-जैसी चंचल आँखें उठाकर केवल क्षणकाल के लिए उसने मेरी ओर देखा था। तब अचानक मुझे उस दिन की याद आ गई थी जब सूरज की खूब उजली रोशनी में उसे घड़ा उठाए माड़िन नदी की ओर जाते देखा था। ऊपर सिर से नाभि तक वस्त्रहीन और नीचे तीन-चौथाई रान से लेकर टखनों तक खुली। जंगली पगडंडी की धूप में आहिस्ते-आहिस्ते सरकता एक साँवला और अर्ध-नग्न शरीर जो मानो उस अकेले और साफ वातावरण में कौंध-सा गया है। सिर पर रखे घड़े को सम्हालने के लिए उठी हुई दो बाँह—उजाले में सरेराह चमकता एकदम नुमाया सीना और···

—"मैं सभ्य नगरों से आया हूँ, धीरे से सिहरकर मैंने सोचा था"—और ये ओरछा के आरम्भिक दिन हैं। वह देश है अबूझमाड़, जहाँ के ऐसे हर चलते-फिरते शरीर सभ्य आँखों में चुभ जाते हैं।

अन्य युवतियों के जाने के बाद निश्चय ही अँगीठी के आसपास का माहौल वैसा नहीं रहा। अकेली पड़कर कोसी संजीदा हो गई, अमरसिंह ऊँघने लगा और अपनी छोटी-छोटी आँखें लिए व्हीले मचान की ओर देखता हुआ चोंगी फूंकने लगा। मुझसे केवल गज भर की दूरी पर कोसी बैठी थी। अँगीठी की आँच का दम-दम करता साया उसके चेहरे पर काँप रहा था—चूंकि हम लोग आमने-सामने बैठे थे अतः इधर-उधर से लौटकर आँखें सामने ही पड़ती। ऐसे अवसरों पर अचानक अकबकाकर कोसी व्हीले की ओर देखने लगती जो हम लोगों की ओर से निर्लिप्त केवल मचान की तरफ कान लगाए देख रहा था। कोसी कभी मुस्कु-राती, कभी धीरे से हँसती या एकाध बार कनखियों से देखकर महज बात करने के लिए बात करती।

—"कुछ आवाज ही नहीं मिलती," व्हीले से कहा जाता—"कहीं सूअरनी सो तो नहीं गई ?"

—"सोएगी कैसे," जवाब मिलता—"उसके गले में रस्सी फँसाकर पेपी जो उधर खींच रहा है।"

एक सम्मिलित हँसी।

—"और वह कुत्ता कहाँ जा मरा," आग की आँच में सफेद-सफेद दाँत

चमकते, "मैं तो सोचती हूँ अभागे को चीते ने न दबोच लिया हो।"

धीरे से एक दबी हुई हँसी और अमरसिंह अचानक चौंककर आँखें खोल देता, थोड़ी देर अकबकाया-सा ताकता रहता और समय पूछकर फिर ऊँघने लगता।

तब रात के साढ़े बारह बज रहे थे। पास-पड़ोस के जंगलों से बचा-खुचा सन्नाटा भी गाँव में लौट आया था। पीरचे के कमरे और डोडी के नीचे से गहरी नींद व खर्राटे की आवाजें उभर रही थीं। कुत्ते के भौंकने का स्वर अब बहुत दूर हो गया था। इतनी दूर जैसे गाँव के एकदम दूसरे छोर या जैसे किसी दूसरे ही गाँव से आवाज आ रही हो। बीच-बीच में दड़बों में बन्द सूअर के नन्हें-नन्हें पिल्ले चिल्ला उठते और जब बातचीत बन्द करके हम लोग चुपचाप आग तापने लगते तो माड़िन नदी का शोर बिल्कुल साफ और निकट होकर सुनाई दे जाता। केवल एक लड़कियों वाला घर ही था जहाँ अब भी उसी तरह हँसी-हुल्लड़ हो रही थी और शायद जिनमें से किसी की आँखों में नींद नहीं थी।

आखिर व्हीले ने जो कहा था, वही हुआ। उसने कहा था कि जब तक कोसी नहीं जाएगी, उनमें से कोई नहीं सोएगा। किसी न किसी तरह उसे उठाकर ही वे दम लेंगी। सचमुच थोड़ी देर बाद उस कमरे से एक लड़की हँसती हुई निकल आई और शरारत भरे स्वर में बोली—कोसी, तुझे न आना हो तो बैठी रह, लेकिन हम लोगों को चादर दे दें।"

—"कौन-सी चादर?"

—"यही जो तूने ओढ़ रखी है।"

—"क्यों, और मैं क्या करूँ?"

—"तुझे क्या करना है," आँखें नचाकर एक क्षण व्हीले की ओर देखा और फिर मुस्कराकर बोली—"इतनी गर्मी तो है..."

कोसी कुछ कहती या न कहती कि उस लड़की ने कोसी के कंधे पर पड़े चादर के छोर को पकड़ लिया और खींचने का प्रयास करने लगी। कोसी के नहीं-नहीं करने डाँटने या लाख खींचतान करने के बावजूद चादर अन्त में जाती रही। पहिले उसका छोर कोसी के एक कंधे से सरका फिर उसकी बाँह व सीने की जोड़ खुली और दूसरे कंधे के उघड़ने के साथ ही उसकी नाभि तक का सारा आवरण बिल्कुल हट गया।

जैसे कोहरा-ढँके बीच आकाश का सीना चीर, कई बड़े-बड़े सितारे एक साथ चमचमाकर मेरी आँखों में ठहर आए हों। जैसे उस दायरे के वायुमण्डल से सर्दी बिल्कुल उठकर दूर निकल गई हो और उसकी जगह तपिश व हरारत भर आई हो। मुझे लगा मानो अबूझमाड़ के ओरछा में न होकर मैं अजन्ता की किसी रोशन-दराज़ गुफा में बैठा हूँ और सामने की कोई निर्जीव तस्वीर एकाएक बोल

उठी हो। जैसे शायद कोसी ही अपने आंचल में अब तक अजन्ता की जीवित चित्र-कला छिपाए बैठी थी और किसी ने झपट्टा मारकर उसे उघाड़ दिया हो—वही मांसल यौवन, शरीर का बिल्कुल वही कटाव, मांस का उतना ही उतार-चढ़ाव और वही गोलाइयाँ जिनकी मासूम हरकतों पर अंगीठी का साया धीरे-धीरे कँपकँपा रहा था।

कई क्षणों बाद कोसी ने मेरी ओर देखा और पहिले की तरह हँस दी। उसकी आँखों के भाव में कोई नयापन न था। वह उसी तरह निश्चित और बे-असर बैठी थी बल्कि थोड़ी दर बाद सर्दी के मारे वह अँगीठी के और पास हो गई। समय का ठीक-ठीक ध्यान फिर मुझे नहीं है। है तो केवल यही कि कुछ काल पश्चात कोसी और व्हीले में कोई बात हुई जिसका एक अक्षर मेरे पल्ले नहीं प्ड़ा। कोसी हँसती रही। रह-रहकर मेरी ओर देखती हुई बड़ी देर तक हँसती रही फिर आवेग में उठकर निमिष ठहरने के बाद, सीधे सोने के कमरे की ओर भाग गई।

एक बज रहा था। तब तक एड की ओर कुछ भी नया नहीं घटा था। अँगीठी के गिर्द अब हम तीनों के अलावा और कोई नहीं था—अकारण उदास मैं, ऊबा हुआ व्हीले और बेतरह ऊँघता हुआ अमरसिंह। सर्दी का वह उरूज कि खुली हवा के नीचे की अँगीठी भी व्यर्थ लगती थी। मुझे बार-बार कोफ़्त होने लगी कि एड के कम्बल लेकर चलने के प्रस्ताव को ठुकराकर मैंने बड़ी मूर्खता की। पन्द्रह एक मिनट बाद इसीलिए जब अमरसिंह ने घर लौटने की बात मेरे सामने रखी तो मैं तैयार हो गया। एड ने वापस लौटने के लिए पहिले ही मुझसे आग्रह किया था। वह तो मेरी ज़िद थी कि···।

पन्द्रह मिनट पहिले कॉटेज की राह पर आकर मैंने सोचा—जब अँगीठी के पास कोसी बैठी थी, उस समय अगर अमरसिंह यही प्रस्ताव रखता तो ?

—"यू नीड ए गर्ल फ्रेंड, शानी !"

मुझे सहसा एड का मज़ाक़ याद आ गया। धीरे-से मुस्कुराते हुए मैंने सोचा—अच्छा हुआ कि यहाँ इतना अँधेरा है और हम लोग एक दूसरे का चेहरा नहीं देख पा रहे हैं।

पहिले नींद में ही बड़ी देर तक वैसी आहट मिलती रही लेकिन पूरी तरह विश्वास नहीं हुआ था। कुछ क्षण उसी उलझन में फँसे रहने के बाद जब अचकचा कर मैंने आँखें खोल दीं तो देखा कि सचमुच एड लौट आया है और बंदूक की बैरल साफ़ कर रहा है।

—"एड," मैं तत्काल खाट पर उठकर बैठ गया और बोला—"तुम कब आ गए ?"

—"अभी। पाँच-एक मिनट हुए होंगे।"

—"क्यों, क्या हुआ ?" एक क्षण ठहर कर मैंने पूछा।

—"नथिंग !" उसी अन्दाज में ठंण्डे ढंग से जवाब देकर एड ने मेरी ओर देखा और एक खिसियानी-सी हँसी हँसकर फिर उसी बंदूक की सफाई में जुट गया।

अपने सोने के पहिले मैंने पेट्रोमेक्स को जलता छोड़ रखा था। तेज प्रकाश सारे कमरे को रोशन किए हुए था और दरवाजे का एक पल्ला खुला होने के कारण उस उजाले का एक टुकड़ा बाहर बरामदे में निकल गया था।

—"मैंने कहा न, मैं इस मामले में बदकिस्मत हूँ," एड बोला—"और इससे ज्यादा क्या मिहनत की जा सकती है। ऐसी सर्दी में इतने-इतने घंटे पेड़ पर बैठना, तौबा ! मुझे तो लग रहा था जैसे मैं बर्फ की कब्र में बन्द हूँ···एक्चुअली, आइ वाज फ्रीज़िंग !"

—"क्या मिस कर गए ?"

—"नहीं," उसने अपनी गर्दन झुका ली—"कम्बख्त चीता ही नहीं आया वर्ना मैं कहता ही क्यों कि 'अनलकी' हूँ। एक तो सर्दी के मारे और ज्यादा बैठना मुश्किल हो गया दूसरे मादा सूअर ने भी चीखना-चिल्लाना बन्द कर दिया था। रस्सी में से लाख जोर-जोर के झटके देता पर वह चूँ भी न करती। आखिर मैं नीचे उतर आया तो यह देखकर बेहद ग्लानि हुई कि मादा सूअर तो जाने कब की मर चुकी है !"

मैं एड को चुपचाप ताकता रह गया। लगा पेट्रोमेक्स के जलने की आवाज और अधिक तेज होकर हम लोगों के बीच बैठ गई है—ऐसे कि माड़िन नदी का शोर भी घुल गया है और कई क्षणों के मौन के बीच का संबंध-सूत्र उस आवाज के सिवाय और दूसरा हो ही नहीं सकता।

—"कितने बज गए ?" जैसे युगों बाद मैंने पूछा हो।

—"चार।" जवाब देकर एड उठ खड़ा हुआ और दरवाजे का पल्ला बन्द करने लगा। उसके बाद एक क्षण ठिठक कर वह कुछ सोचता रहा फिर उस सर्दी में भी उसने पानी का एक गिलास पिया।

—"मुझे लगता है कि मैंने तुम्हारी नींद खराब कर दी।"

—"नहीं तो," अपना स्वर मुझे खुद ही बनावटी लग रहा था लेकिन मैंने संकोच करते हुए सफाई दी—"मैं तो खूब सो चुका हूँ।"

—"क्या बहुत पहिले आ गए थे ?"

—"हाँ।"

—"अच्छा, गुड नाइट···"

—"गुड नाइट, एड !"

उसी समय पहाड़ियों की ओर से आता कोई परिन्दा चींचिक्-चींचिक् करता हुआ कॉटेज के ऊपर से गुजर गया।

सात

—"सुनो, सुनो," कथावाचक गूमा ऊँची आवाज़ से घोटुल के सभी सदस्यों को सम्बोधित करते हुए कहता है—"एक माड़िया कोलियार नाम का। उसके लड़के का नाम था पोरियल। बरसात के पहिले-पहिले दिन थे। उसकी पत्नी गाँव की कुछ स्त्रियों के साथ कंद-मूल खोदने के लिए जंगल गई। दुर्भाग्यवश कुछ मिला नहीं। दूसरे दिन भी इसी कोशिश में वह जंगल गई लेकिन फिर कुछ हाथ नहीं आया हालाँकि उसके साथ की औरतें उससे ज्यादा भाग्यवान थी, उन्हें ढेर कंद मिले"···

कहानी सुनने के लिए घोटुल की अँगीठी के गिर्द सारे सदस्य और गैर-सदस्य सिमट आए थे। प्रत्येक ने आग की आँच पर अपनी हथेलियाँ फैलाकर गूमा के चेहरे पर आँखें जमा दी थीं। सारे गाँव में गूमा को छोड़कर कहानी कहना और किसी को नहीं आता—इस मामले में घोटुल के सभी युवक फिसड्डी या लजालू हैं—शायद इसीलिए प्रौढ़ावस्था में घोटुल के सदस्यों के बीच गूमा का बेहद सम्मान होता है। नाच और गीत के दौरान चाहे गूमा को लोग भूल रहें, सोने के बड़े कमरे में अँगीठी के पास आकर हर युवक गूमा की ही याद करता है।

भीड़ से घिरकर बात करते समय आत्मविश्वास कैसा होता है, इसका अनुभव गूमा को देखे सुने बिना नहीं होता। निचले होंठ में सुरती, आँखों में प्यार की चमक और चेहरे पर निस्संकोच-सा भाव लिए वह कहता है···

"नाले के साफ पानी से अपने-अपने कंद-मूल धोकर सब वापस लौट रही थीं। राह में पोरियाल के खेत पड़ते थे। संयोग की बात कि उन्हीं खेतों में पोरियाल की पत्नी को ढेर कंद-मूल मिले। सबके संग-संग खोदकर उसने भी कंद इकट्ठे किए और घर की राह ली।

"—देखो," घर पहुँचकर उसने अपने पति से कहा—"तुम्हारे खेत से ये ढेर जंगली कंद "गारंग-आमट" मैं समेट लाई हूँ। यदि जल्दी ही उस खेत में तुमने हल नहीं चलवाया तो मैं तुम्हें छोड़कर चली जाऊँगी। सचमुच मैं भाग जाऊँगी। कल घोटुल के लड़कों को बुलवाओगे न ?"

—"अच्छी बात है," उसके पति ने कहा। पिता कोलियर ने भी स्वीकृति दे दी।

घोटुल के लड़के तुरन्त बुलवाए गए। लेकिन उस दिन काम करने में उन लोगों ने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। कहा कि दूसरे दिन वह काम वे कर सकते हैं।

दूसरे दिन सारे गाँव के लोग अपने-अपने खेतों में हल चलाने के लिए निकले। उस समय तक बोनी हो जानी चाहिए थी क्योंकि रोज ही बरसात के आसार दिखाई देते थे।

—"अभी बोनी न की जाय," कुछ लोगों ने प्रस्ताव रखा—"हम लोगों को चाहिए कि पहिले अपने 'कट्टा-पेन देवान' के लिए काकसार नाच करें।"

उस प्रस्ताव से सभी सहमत हो गए। अतः कोलियार व उसका लड़का पोरियल दोनों बाहर के गाँव भेजे गए। लगातार तीन दिनों तक दोनों ने पड़ोस के सभी गाँवों में इस बात की सूचना दी कि अमुक-अमुक तारीख को काकसार मनाया जाएगा। आखिर उनके लौटने के बाद काकसार का आयोजन किया गया।

काकसार के दौरान पोरियल की पत्नी किसी दूसरे आदमी के साथ भाग गई। उस समय अभागा पोरियल 'देवान' के मन्दिर में था। लौटने पर देखा कि उसकी पत्नी गायब थी।

—"मेरी पत्नी कहाँ गई?" उसने पूछा।

—"जाएगी कहाँ, यहीं कहीं होगी···!"

—"मैं थोड़ी शराब लेकर आया हूँ," पोरियल ने बेफिक्र होकर कहा—"चलो, कहीं बैठकर पिएँ!"

—"ठीक है।"

—"लेकिन ठहर," वह बोला—"प्याले बनाने के लिए मैं पत्ते तो ले आऊँ।"

पत्ते की तलाश में घूमते हुए उसकी निगाह एक चीज़ पर अटक गई। पत्नी-चोर वहाँ कहीं नहीं था लेकिन नाच की पोशाक में सजने वाली उसकी कुछ घंटियाँ वहीं छूट गई थीं। उन्हीं घंटियों में पत्ते भी उलझे हुए थे जिन्हें उठाने के लिए पोरियल ने हाथ बढ़ाया।

—"किन्तु यह क्या?" अचानक चौंककर वह सोचने लगा—"क्या घंटियों में साँप बैठा है? जैसे ही मैंने हाथ बढ़ाया क्या उसी तरह की आवाज नहीं हुई? नहीं, नहीं भाइयो, उसने अपने दूसरे साथियों को भी रोक दिया, दूर रहो और गाँव वालों को बुलाओ···"

सब आए। क्या हुआ, क्या हुआ। सबके होठों पर एक ही सवाल था। आखिर देखकर सभी हैरत में पड़ गए। लोग नहीं चाहते थे कि पोरियल का पिता

कोलियार उसे देखे लेकिन उसे पता चल ही गया।

—"नहीं, नहीं," उसने कहा,—"जो मेरी बहू को भगा ले गया है वह और कोई नहीं बल्कि डिकावंडी है।"

—"कोई बात नहीं," पोरियल ने अपने आपसे कहा—"दूसरे दिन देखा जाएगा।"

दिन बीता। रात आई। जल्दी ही मुर्गों ने भी बाँग दीं। सुबह का जावा खाने के बाद वह जगह उन्होंने छोड़ दी और डिकावंडी के गाँव गए। डिकावंडी के घर के पासवाले पेड़ पर पोरियल चढ़ गया और रास्ता देखने लगा। थोड़ी देर बाद सहसा उसकी पत्नी दिखाई दी। वह अपने सिर पर पानी का घड़ा लेकर आ रही थी। चटपट पेड़ से उतरकर पोरियल ने पत्नी को पकड़ लिया और उसे घसीटता हुआ देवान के मंदिर में ले आया।

—"क्यों रे, तू दूसरे आदमी के साथ क्यों भाग आई ? मेरे घर का खाना क्या तुझे काटता है ? सच कहता हूँ अभी अगर तू मेरे साथ न आती तो मैं तुझे जान से ही मार डालता।"

उसकी पत्नी डर के मारे काँपने लगी, बोली—

—"भगवान के लिए ऐसा न करना। मैं अब तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगी, कभी नहीं। दिन रात तुम्हारी ही सेवा करूँगी।"

—"जोहार !"

कहकर कथावाचक विदा लेता है।

मोटे-मोटे लट्ठों वाली आग पर राख की पर्त पड़ जाती है। उठती हुई लपट या रोशनी के अभाव में घोटुल का कमरा थोड़ा धुँधला जाता है। कहानी समाप्त होते ही मद्धम आँच वाली नीम-रोशनी में सभी चेहरे खिल जाते हैं और कई जोड़ा छोटी-बड़ी आँखों में चमक पैदा हो जाती है।

—"गूमा दादा, एक और"···कुछ नौजवान आग्रह करते हैं।

—"हाँ, हाँ, एक और।" उन्हें प्रायः-प्रायः सभी का समर्थन प्राप्त है क्योंकि सब एक स्वर से कहते हैं।

—"एकाध और याद है ?" एड धीरे से पूछता है।

—"एक ? एकाध की क्या बात है," बीच ही में अमरसिंह बोल उठता है—"गूमा सुनाने के लिए बैठे तो सारी रात निकल जाय लेकिन कहानियाँ खत्म ही न हों।

—"फिर देरी किस बात की है ?"

—'गूमा।"

—"ए गूमा दादा"···

गूमा सभी की आवाजें सुनता है लेकिन जैसे नहीं सुनता। दो-एक क्षण मुस्कराता है फिर कान पर खुँसी हुई चोंगी निकालकर चुपचाप तम्बाकू का धुँआ पीने लगता है।

वैसे भी गूमा संजीदा किस्म का आदमी है। वहुत कम बातें करता है, अक्सर यहाँ-वहाँ दिखाई नहीं देता और अपने में डूबा हुआ व उदास रहता है। पहिली भेंट की पहिली दृष्टि में दिल जीतना किसे कहते हैं, यह गूमा को देखकर मैंने जाना था।

पैंतालिस-पचास की उम्र, अच्छा स्वस्थ शरीर, चेहरे पर स्वाभाविक सादगी और ऐसी डूबी-डूबी तथा प्रभावशाली आँखें कि जिस पर उठतीं उसे जीत लेतीं। आकर्षण के साथ आँखों में ऐसी स्वाभाविक उदासी क्या जन्मजात ही हो सकती है ? मैंने सोचा था—या उसके एकाकी जीवन की वेदना सनी छाया है जो पलकों में मुस्तक़िल होकर झुक गई हैं ? दुःख को उस सीमा तक आत्मसात कर लेने के वाद का मानसिक स्तर कैसा होता होगा ?

अवूझमाड़ के चहुँओर व्यापे दरिद्र जीवन में सबसे विपन्न आदमी वह होता है जिसके अपने खेतों के अलावा अपने रक्त के सम्बन्धी नहीं होते। गूमा, उन्हीं अभागों में से एक था जिसके माता-पिता वचपन से जाते रहे और दूर-दराज़ के सम्बन्धियों के बीच जैसे-तैसे करके वह पला और एक दिन जवान भी हो गया। जिसके पास अपनी सम्पत्ति जैसी कोई चीज़ ही नहीं थी और जिसका गुजारा कठि-नाई से होता हो। उसके बाकायदा व्याह की वात सपना नहीं तो और क्या थी ?

गूमा ने वही राह पकड़ी जिस पर वहाँ के गरीब युवा जाते हैं। कुरमेर गाँव की एक लड़की के लिए गूमा 'लमहाड़े' खटने लगा।

लमहाड़े खटना अवूझमाड़ की वह प्रथा है जिसके अनुसार युवक युवती के माँ-बाप के घर जाकर रहने लगता है। युवती को पत्नी के रूप में प्राप्त करने के लिए पिता की ओर से एक शर्त होती है। शर्त यह कि तीन पाँच या सात वरस तक उसे दिन-रात खटकर कड़ी मिहनत करनी पड़ती है। जब माँ-बाप प्रसन्न होते हैं तभी लड़की का हाथ पत्नी के रूप में लड़के को दिया जाता है, अन्यथा नहीं।

पूरे साल भर तक गूमा ने जी तोड़कर मिहनत की। उसे पाँच वरस तक खटना था लेकिन प्रसन्नता की बात तो दूर रही, युवती के माँ-बाप उससे हमेशा नाराज़ रहते थे। उसके साथ नौकरों की तरह दुर्व्यवहार किया जाता था और हर घड़ी उसे अपमानित करके निकलवा देने के प्रयत्न होते थे।

गूमा ने उपेक्षा और यातनाओं के बीच आँखें खोली थीं अतः ऐसे दुख न

नए थे और न असह्य—वह चुपचाप सब पी जाता। अक्सर जब शाम को घर लौटता तो थकावट के मारे शरीर का जोड़-जोड़ टूटने लगता और अंग-अंग चूर मालूम होता। आँखें बंदकर वह निश्चल-सा पड़ जाता—बिलकुल निर्जीव और मृत-सा। कई बार उपेक्षा के अतिरेक के कारण उसकी आँखें झलमला जातीं। निश्चय करता कि दूसरे दिन उस जीवन को छोड़कर वह कहीं भी चला जाएगा लेकिन एक ऐसी शक्ति आड़े आ जाती जिससे छूटना असंभव था—वह थी उसकी होने वाली पत्नी हिरमे जिसका सशरीर आकर उसके सामने खड़े हो जाना ही काफी था—चाहे वह बोले या भरी-भरी आँखों से चुपचाप खड़ी देखती रहे।

दस्तूर के मुताबिक वे लोग अलग-अलग रहते व सोते थे। पहिले कुछ दिन तो हिरमे से बातचीत का भी सम्बन्ध नहीं था। जो कहना-सुनना होता उसके माँ-बाप से कह-सुनकर वह अपने कमरे में लौट आता लेकिन धीरे-धीरे कई ऐसे अवसर आए जब घर या बन में अकेली-दुकेली वह टकरा गई। और ऐसी भेंटों में हिरमे ने दी पहिले एक झनझनाहट पैदा करने वाली मुस्कुराहट, फिर हँसी, फिर ताने-तिश्ने, फिर···

उस रात ऐसी ही किसी चोट से तिलमिला कर वह आधा खाना छोड़ पत्तल से उठ गया। घर के मुखिया ने कोई इतनी अपमान-भरी बात कह दी कि मुँह का कौर गले के नीचे नहीं उतरा। बोला कुछ नहीं, एक क्षण अपने होने वाले ससुर की ओर देखकर वह उठ गया, बस। एक अँधेरे कोने में पत्तल सीती हुई हिरमे भी वहाँ बैठी थी। भगवान जाने उसने क्या सोचा होगा। क्या एक औरत के लिए गूमा ने अपने पौरुष को बेच दिया है ?

बड़ी रात तक उसे नींद नहीं आई और वह करवटें लेता हुआ पड़ा रहा। उसे लग रहा था जैसे निर्णय करने की घड़ी आ पहुँची है—कोई भी अंतिम कदम उसे उठा लेना चाहिए, इस पार या उस पार। इसी निश्चय-अनिश्चय की स्थिति में उसकी आँखें कब लग गईं, उसे याद नहीं। यह भी याद नहीं कि उस वक्त रात के कितने बजे थे। बाहर की रात काजल-जैसी काली थी—सुनसान तथा डरावनी। गाँव की दुनिया निश्चिन्त सो रही थी।

नींद में अपने कंधे पर उसे कई बार स्पर्श महसूस हुआ था। कई बार कानों में उसे हल्की-हल्की आवाज़ सुनाई दी और लगा जैसे कोई नाम लेकर पुकार रहा हो। जब हड़बड़ाकर उसने आँखें खोल दीं तो देखा कि हिरमे उसके बिस्तर पर बैठी उसे जगा रही है।

आग की बिना लपट वाली लाल-लाल व अस्पष्ट रोशनी में हिरमे का मुख दमक रहा था—साँवले रंग के माँस में सचमुच बहुत चमक होती है और उस पर अगर हिरमे की तरह ठोढ़ी पर गुदने की छोटी-छोटी बुँदकियाँ हों तो ?

गूमा को एकाएक कुछ सूझा नहीं कि क्या कहना चाहिए। उसने धीरे से

हिरमे का हाथ पकड़ लिया और कुछ कहना चाहता था लेकिन उसकी आवाज़ कंठ में ही फँसकर रह गई।

बाहर रात साँय-साँय कर रही थी। कभी अचानक पेड़ों की शाखें डोलने लगती और थोड़ी देर हवा में केवल पत्तों के झूमने की आवाज़ होती। हर क्षण लगता जैसे कोई शोख झोंका अचानक आकर उन्हें बरबस समेट देगा।

—"असल में दुश्मन बाप नहीं, माँ है।" बड़ी देर बाद हिरमे ने कहा—"वही तुम्हें फूटी आँखों नहीं देखना चाहती। चाहती है कि किसी तरह ऊबकर यहाँ से चले जाओ···।"

—"क्यों, कोई वजह ?"

—"वजह तो अब वही जाने," वह बोली—"जब तुम पहिले दिन आए तब भी वह नहीं चाहती थी कि तुम मेरे लिए लमहाड़े खटो···।"

कई क्षण तक गूमा चुप रहा फिर बोला—"और घर पर कौन चाहता था कि मैं खटूँ, तुम्हारे बाबा ?"

—"हाँ।"

—"और ?"

बड़ी देर तक चुप्पी रही। बाहर से हवा के पंखों में सन्नाटा आ-आकर बैठता, फिर चुपचाप निकल जाता। दोनों के बीच आग का हल्का व लाल-लाल साया भर जमा रहा।

—"और तुम ?" सहसा पूछते हुए गूमा को अपनी आवाज़ काँपती हुई लगी।

हिरमे ने उसकी ओर आँखें नहीं उठाईं। धीरे से गूमा की हथेली खींचकर उस पर अपना पसीजता हाथ रख दिया, धीरे से झुकी और उन दोनों मिले हुए हाथों पर चुपचाप अपना बायाँ गाल धर दिया।

उस रात हिरमे गूमा के कमरे से नहीं लौटी। और वही क्या, ऐसी कई रातें आईं और चुपचाप निकल गईं पर किसी को पता नहीं चल पाया। पता तो शायद तब लगा होगा जब कि एक सुबह गूमा के खाली कमरे के साथ-साथ हिरमे को भी घर से गायब पाया होगा। वे लोग भागकर ओरछा आ गए और अपनी नई ज़िन्दगी शुरू की—ऐसी ज़िन्दगी जिस पर न किसी का अंकुश था और न अपमान। हिरमे फिर जीते जी अपने माँ-बा केप घर लौटकर नहीं गई। जीवनकाल में उसने गूमा को सभी कुछ दिया—अपने घर का सुख, अपने खेत का सुख और दो बच्चियों का सुख। वही बच्चियाँ जिनमें से बड़ी जब पहिली बार अपने ननिहाल, मामा के यहाँ गई तो बदले के रूप में उसे नहीं आने दिया गया। मामा ने जबरन उसकी शादी अपने लड़के से कर ली।

अब गूमा का विधुर जीवन पहिले जैसा ही वीरान, उदास और अकेला हो

गया है। पत्नी को भगवान ने छीन लिया, बड़ी बच्ची को उसके मामा ने अपने लड़के के साथ जबरन ब्याह कर हमेशा के लिए रोक लिया और अकेले होने के कारण घर में वही गरीबी लौट आई है। दस साल की छोटी बच्ची और अपने जीवन के लिए वह कुछ भी कर लेता है—किसी दूसरे के खेत से मेहनत-मशक्कत या कुली-मजदूरी और जैसे-तैसे दिन गुज़र ही रहे हैं···।

अँगीठी के सामने फैली राख पर ही सुरती की पीक थूककर गूमा दूसरी कथा का सूत्र पकड़ता है—

—"सुनो, सुनो, हे भगवान कुछ जवान लड़कियाँ बाजार जा रही हैं। पहिले बैलगाड़ी तैयार की गई, अच्छे-अच्छे कपड़े पहिने और खूब सज-धजकर वे लोग निकलीं। राह में खाना आदि पकाने के लिए एक रावत रख लिया गया। वह भी अपने सामान वगैरह लेकर आ गया और आखिर सब लोगों को लेकर बैलगाड़ी बाजार की ओर चली।

रास्ते में नदी पड़ती थी। पुल उस पर नहीं था और बिना नाव की सहायता के पार करना कठिन था।

—"ओ नाव वाले," लड़कियों ने उस पार बैठे नाविक को पुकारा—"अपनी नाव लाकर हम लोगों को उस पार कर दोगे ?"

—"कहाँ जाना है ?"

—"हम लोग बाजार जा रहे हैं !"

—"कौन-सा बाज़ार ?"

—"हमें गाली बाजार जाना है। नाव लाते हो ?"

नाव वाला तब भी उसी पार था, वहीं से चिल्लाकर उसने पूछा—"क्या मिहनताना मिलेगा ?"

—"पैसे दे देंगे, चलना है ?"

—"पैसों का मैं क्या करूँगा ?"

—"फिर क्या चाहते हो ? हमारे पास एक पीतल का बर्तन है, चाहो तो उसे ले लो।"

—"बर्तन का क्या होगा ?"

—"या फिर चावल ले लो।"

—"वह मेरे किस काम का ?"

—"अच्छा, चावल न सही, सरसों ले लो।"

—"सरसों का मैं क्या करूँगा ?"

—"तो फिर हम तुम्हें क्या दें ? तुम पैसे लेते नहीं, चावल लेते नहीं, बर्तन नहीं, सरसों नहीं। बताओ फिर क्या लोगे ?"

नाव वाला मुस्कुराया—"अच्छी बात है पहिले तुम लोग इस पार तो

आ जाओ। मैं अपना मिहनताना खुद वसूल कर लूँगा।''

तब नाव वाला नाव लेकर इस पार आ गया। पहिले सारा समान ढोकर उसने उस पार किया। उसके बाद फिर लड़कियों को लेने के लिए इस पार पहुँचा। बैल थके हुए थे अतः बैलगाड़ी खोल दी गई और रावत भी सुस्ताने के लिए बैठ गया। लड़कियाँ नाव पर बैठीं और नदी पार होने लगी।

उस पार पहुँचने पर जब लड़कियाँ नाव से उतरीं तो नाव वाले ने मुस्कुरा कर कहा—

—''मेरा मिहनताना ?''

—''ले लो, क्या चाहिए ?''

—''मुझे और कुछ नहीं चाहिए,'' आगे बढ़कर नाव वाले ने एक जवान लड़की का हाथ पकड़ लिया—''बस मुझे तो···।''

और जब तक वह या दूसरी लड़कियाँ कुछ कहतीं, नाव वाले ने उसे फौरन अपनी गोद में उठा लिया और पास की झाड़ी में घुस गया···।

उसके आगे गूमा ने क्या कहा यह सुन पाना हम लोगों के लिए कठिन हो गया, क्योंकि बीच ही में सारे युवकों की हँसी इतनी ज़ोर से उभरी कि घोटुल का छोटा-सा कमरा गूँज कर रह गया और तभी पड़ोस का कोई कुत्ता ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा।

आठ

जब जीप धवड़ई पहुँची तो ग्यारह बज रहे थे। धवड़ई के बाजार लगने में अभी देर थी। सड़क के दाहिने किनारे पर मैदान की तरह चौड़ी और बड़ी अमराई में बाज़ार भरने की पहली-पहली तैयारी चल रही थी। नारायणपुर तथा दूर की दूसरी जगहों से बैलगाड़ियाँ पहिले ही पहुँच चुकी थीं और खुलकर सायों में पड़ी थीं। वैसे तब तक कुछेक पेड़ों के नीचे माला-मूँगा या रेडी-मेड कपड़ों की इक्की-दुक्की दूकानें जमायी जाने लगी थीं लेकिन अधिकांश दूकानदार बैलगाड़ी या किसी पेड़ की आड़ पका-खा रहे थे।

धवड़ई में सारे अबूझमाड़ के लिए केवल एक बाज़ार लगता है—हफ़्ते में एक दिन का। लोग दूर-दूर से खिंचे आते हैं। अबूझमाड़ के भीतरी गाँव वाले शुक्रवार के बाज़ार के लिए मंगल या बुधवार को लोग गाँव छोड़ते हैं तब कहीं बाज़ार समय में धवड़ई पहुँचना होता है। जब हम लोग धवड़ई की राह पर थे तो हर फर्लांग दो-फर्लांग के फासले पर ऐसे कई समूह बाज़ार की ओर बढ़ते हुए मिले थे। इक दो नालों के किनारे डले हुए पड़ाव अलग दिखे थे जिनके चिह्न स्वरूप पड़े ईंट के चूल्हे में बुझे हुए कोयले और जली हुई लकड़ियाँ रह गई थीं। किसी बियाबान जंगल में ऐसा कुछ देखकर कितनी विचित्र-सी अनुभूति होती है! मन उसी तरह डूबता है जैसे किसी वीरान में खड़े खंडहर में पहुँचकर हो जाय—निढाल निढाल और उदास!

—"सेठ तो बाज़ार में नहीं है," अमरसिंह ने आकर सूचना दी। एक ने सड़क के किनारे जीप रोक दी थी और हम लोग अमरसिंह के ही लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। सेठ याने मूसाअली धवड़ई का एकमात्र व्यापारी जिसकी खासी बड़ी किराने व कपड़े की दूकान धवड़ई में है। सारे अबूझमाड़ के लिए अकेली वही दूकान मुस्तक़िल तौर पर जमी हुई है जिससे अधिकांश लोगों की ज़रूरतें पूरी होती हैं। इस अधिकांश में सभी हैं, आदिवासियों के अलावा ओरछा स्कूल के मास्टर, जंगल विभाग के कर्मचारी, अबूझमाड़ में भूले भटके दौरा करनेवाले सरकारी अधिकारी, जंगल ठेकेदार व उसके लकड़ी ढोने वाले ट्रकों के ड्राइवर-कन्डक्टर।

ओरछा के पाँच मील इधर तक लकड़ी ढोने वाले ट्रक चलते हैं। पण्डरीपानी का जंगल ठेके से उठ गया है और रोज़ मनों इमारती लकड़ी निर्यात होती है। कुछ तो इस कारण भी सेठ मूसाअली का घर ज़रूरी स्टाप बन गया है।

—"चलो, "स्टीयरिंग सम्हालते हुए एड ने अमरसिंह से कहा"—उसके घर ही चलकर देखते हैं।"

जीप स्टार्ट हुई और सड़क के बीच आकर पाँच-दस मील की स्पीड से मूसासेठ के घर की ओर रेंगने लगी।

दरअसल, वहाँ फासला अधिक नहीं था। थोड़ी ही दूरी पर, सड़क से लगा हुआ पक्का और ऊँचा मकान मूसा सेठ का ही था।

—"महीने दो महीने या साल दो साल की बात और है," मैंने दूर-दूर तक फैले जंगल और पहाड़ियों की ओर देखकर सोचा—"क्या इस बियाबान इलाके में भी घर-बार बसाकर कोई इस तरह रह सकता है ? क्या पैसों का आकर्षण सच-मुच इतना बड़ा होता है कि आदमी अपनी असली ज़िंदगी को हमेशा के लिए छोड़कर किसी ऐसे जंगल में आ बसे ? और वहाँ प्रमुख क्या है ? पैसे इकट्ठे करने की साध या दूसरी जगहों के संघर्षशील जीवन में न टिक पाने की विवशता ? कोई पैंतीस साल पहिले मूसा सेठ बरार से आकर धवड़ई में बस गया। पहिले दूकान निहायत छोटी और मामूली थी पर धीरे-धीरे बढ़कर आज इस स्थिति तक आ गई है। बिना मुल्क की नवाबी कैसी होती है, यह मूसा सेठ को धवड़ई में ही देख-कर जाना जा सकता है।

—"यह आदमी कैसा है," घर के सामने रुकते हुए मैंने एड से पूछा।

—"कौन मूसा सेठ ?" एड ने ठहरकर कहा—"कैसा आदमी से तुम्हारी क्या मुराद है, पहिले यह बताओ। अच्छा या बुरा, यही न ?

मैंने स्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया।

—"अव्वल तो तुम्हारा सवाल ही सही नहीं है, "एक क्षण मेरी ही ओर देखकर एड मुस्कुराता रहा फिर धीरे से हँसकर बोला—"आदमी अच्छा या बुरा कैसे होता है, मुझे समझाओ। कोई मेरे लिए बहुत बुरा होकर भी दूसरे के लिए अच्छा हो सकता है या मेरे लिए बहुत अच्छा होकर भी दूसरे के लिए बुरा, नहीं ? ऐसी स्थिति में कोई निश्चय स्थिर कर फैसला कर देना क्या आसान बात है ? क्या यह सम्बन्धित या आंशिक सत्य ही न होगा ?"

मैं चुप हो गया। प्रश्न को इतनी गम्भीरता से लिया जाएगा, यह मैंने कहाँ सोचा था ?

एड ने बताया कि मूसा सेठ के बारे में कई लोग अजीब-अजीब बातें करते हैं लेकिन वह कभी ध्यान नहीं देता। उसे देखना केवल इतना ही था कि एड के साथ उसका व्यवहार कैसा है। सो वह शिकायत उसे कभी नहीं हुई। अलबत्ता,

शुरू से लेकर उस घड़ी तक मूसा सेठ ने उसकी बेहद मदद की थी। खासकर डाक-आक के मामले में उसने जितना सहयोग किया, वह भूलने की चीज़ नहीं। अबूझ-माड़ में डाकखाने की कल्पना तक व्यर्थ है। एड की सारी डाक नारायणपुर के पते पर आती थी। वहाँ एक सज्जन रिसीव करके किसी ट्रक वाले के हाथ मूसा सेठ को भिजवा दिया करते थे। मूसा सेठ किसी गाँव वाले के ज़रिये एड तक पहुँचवा देता अथवा बाज़ार के दिन स्वयं आकर एड अपनी डाक उठा लेता। शायद इसी-लिए कई बार और काम न होने पर भी एड धवड़ई अवश्य आता और वहाँ पहुँचते ही सबसे पहिले मूसा सेठ की तलाश होती।

बड़े-बड़े जंगलों वाले उस पक्के मकान के सामने रुके तो अजीब-सी अनुभूति हुई। कुछ वैसी नवीनता की जैसे महीनों गाँव में रहने के बाद अचानक शहर पहुँचने पर होती है। घास-फूस की छोटी-छोटी झोंपड़ियों के बीच से आए थे। संभवत: इसीलिए उस मकान के बड़े होने का एहसास और शिद्दत से हुआ। मूसा सेठ के मकान के सामने अहाता नहीं था। बाईं ओर की दीवार के पास एक बिना चकों वाली टूटी बैलगाड़ी मुद्दतों से पड़े रहने के कारण सड़ रही थी और बगल से कोई जंगली बेल उगकर छप्पर पर चढ़ गई थी।

जंगलों के भीतर मकान में दो खण्ड थे। अलग-अलग दो दरवाज़े जिनमें से एक पर टाट का परदा झूल रहा था। अगर एड ने मूसा सेठ का नाम मुझे न बताया होता तो भी मैं पहिचान जाता कि वह एक मुसलमान का घर है। सार्व-जनिक रूप से एक प्रशिक्षित मध्य-वर्गीय मुसलमान घर का कैरेक्टरस्टिक क्या टाट का परदा नहीं है ? मूसा सेठ को आवाज देने के बाद जितनी देर हम लोग बाहर खड़े रहे, मेरी नज़र टाट के परदे की ओर जमी रही। लग रहा था जैसे परदा हटाकर कोई न कोई बराबर बाहर झाँकेगा और यदि उस क्षण को मैंने गवाँ दिया तो बड़ी मूर्खता होगी। क्यों ?

—"लगता है, मूसा सेठ है नहीं," एड ने उधर ही देखते हुए कहा।

—"जाएगा कहाँ," अमरसिंह बोला—"बाज़ार में भी तो नहीं था।"

—"उसकी रोज की दूकान कहाँ लगती है ?" मैंने पूछा।

—"यहीं, इस हिस्से में," एड ने जवाब दिया—"लेकिन आज के दिन तो वह भी बाज़ार उठ जाती है।"

एकाध मिनट में परदे की ओर और देखता रहा। वह क्षण वास्तव में आता या न आता कि दूसरे दरवाजे से मूसा सेठ के बदले एक ऊँचा-पूरा अफ़गानी पठान निकल आया। एड ने अभिवादन के लिए हाथ उठाया और जवाब देकर मुस्कराता हुआ वह हमारी ओर बढ़ आया।

—"क्या यही मूसा सेठ है ?" हाथ-आथ मिलाकर बैठ जाने के बाप मैंने एड से पूछा।

—"नहीं, वह यह नहीं है," एड बोला—"यह तो खान है। उसका एक किरायेदार। चलो बाज़ार ही चलते हैं।"

खान ने अपनी समझ से हम लोगों की बड़ी खातिर की। बैठाया, पानी पिलाया, चाय के लिए पूछा और इंकार करने पर भी सुपारी तथा इलायची दी। उससे विदा लेते तक मैं उसे लगातार देखता रहा। कम्बख़्त ने ऐसी सेहत वाला शरीर पाया था कि पास खड़े होने पर अपने बौनेपन का एहसास होता था—अपनी विशिष्ट पोशाक में उसका खूब ऊँचा-तड़ंगा शरीर किसी पर भी छा जाने की ताक़त रखता था—अच्छा रौबीला चेहरा-मोहरा और सुरमे की लकीरों में डूबी चुभती हुई आँखें···

—"यह कहाँ से आन टपका ?" बाज़ार की ओर जाते हुए मैंने रास्ते में पूछा।

—"क्यों, हम सब किस रास्ते से आए हैं ?"

—"राह तो एक ही है," मैंने हँसकर कहा—"लेकिन इस काबुली पठान को यहाँ देखकर ताआज्जुब होता है। इस भयानक जंगल में वह किस मतलब से पड़ा हुआ है ? क्या यहाँ भी इनका धंधा चलता है ?"

—"हाँ।"

—"क्या कहा ?" मैं आश्चर्य में भरकर बोला—"कौन लोग लेन-देन करते हैं ? क्या आदिवासी"···

—"हाँ, और उनके अलावा भी तो कई लोग हैं। मूसा सेठ जैसे बाशिन्दे या छोटे-मोटे सरकारी कर्मचारी।"

आगे कुछ बोलने की हिम्मत नहीं हुई। लगा दुनिया का सबसे बड़ा कम-ज़ोर और बिना कलेजे का आदमी शायद मैं ही हूँ। उद्देश्य चाहे जो हो यह सत्य तो अपनी जगह है कि काम करने की वैसी शक्ति मुझमें नहीं।

बाज़ार अब अपेक्षाकृत भरा हुआ लग रहा था। कई कई कोनों से लड़ने या बिकने के लिए आए हुए मुर्गों के बाँग देने की आवाज़ एक-पर-एक आ रही थी और उसके साथ वह घुला-मिला स्वर बह रहा था जो बाजार के माहौल का अपना होता है।

वहाँ एक अनोखी जमघट थी—नंगे-अधनंगे शरीरों का ऐसा जमाव कि मुट्ठी भर भरे-पूरे कपड़ों वाले वहाँ बेमेल लग रहे थे। कुरता-पाजामा या साड़ी पहिने किसी भी व्यक्ति को बाज़ार के किसी भी कोने से अलग देखा जा सकता था। इतने विभिन्न प्रकार के आदिवासी मैंने कभी नहीं देखे थे। वे अधिकांश माड़िया ही थे लेकिन एक इलाके की स्त्रियों की सजावट दूसरे से बिल्कुल भिन्न थी। कुछ की जूड़ा बाँधने की शैली अलग तो कुछ के अलंकार विचित्र। किन्हीं गलों में माला-मूँगों का ढेर तो किन्हीं की आधी-आधी बाँह गिलट के जेवरों से लदी

हुई। कई-कई युवा स्तन खुले थे, कई अध-खुले और कई बेपरवाही से ढँके हुए।

अगर मैं इस जीवन का अभ्यस्त न हो गया होता तो? मान लो अगर किसी सभ्य नगर के एक युवक को अचानक लाकर यहाँ खड़ा कर दिया जाय? मैं धीरे से मुस्कराया। सहसा मुझे कोसी की याद आ गई और उस याद के साथ ही दो अलग-अलग तस्वीरें आकर ज़हन में ठिठक गईं—एक वह जिसमें वह घड़ा उठाए माड़िया नदी की ओर चली जा रही है और दूसरी वह जो अँगीठी के दम-दम करते आँच में झलकती हुई बैठी है···

—"पेपी!" अचानक एक ओर से आई कुछ पहिचानी-सी आवाज़ से मैं चौंका।

—"रेको?" एड मुड़कर आश्चर्य से कह रहा था—"तुम भी आई हो?"

लौटकर मैंने देखा कि रेको ने धीरे से मुस्कराकर सिर हिला दिया। अपने सामने बाँस की कुछ चटाइयाँ और टोकनियाँ धरे वह उसी कपड़े में खड़ी थी जिसमें मैंने उसे पहिली बार देखा था—उसी अंदाज़ में जिसमें सादगी से अधिक करुणा टपकती है।

—"आना ही था तो मुझसे क्यों नहीं कहा?" एड ने शिकायताना स्वर में आत्मीयतापूर्वक कहा—"पैदल चलने से तो बचती।"

रेको फिर फीके ढंग से मुस्कराई और आँख झुकाकर चटाइयों की ओर देखने लगी। उसके पीछे खड़ी गाँव की एक लड़की हँसी, मानो कहती हो कि मोटर-गाड़ी का आसरा कब तक? जब तुम ओरछा नहीं आए थे तब भी बाज़ार लगता था और यहाँ से चले जाने के बाद भी इसी तरह लगेगा।

—"लाली भी आया है?" एड ने पूछा।

—"नहीं," रेको ने सिर हिला दिया और इतना ही करते-करते उसका चेहरा एकदम उदास हो गया। कमज़ोर-सी आवाज़ में वह बोली—"बीमार है।"

—"कब से?"

—"एक हफ़्ता हो गया।"

मैंने एड के हैरान चेहरे की ओर देखकर सोचा कि लाली तो बरसों से बीमार है, क्या एड यह भूल गया?

—"कोई नई बात?" उसने आहिस्ते से पूछा।

—"कुछ नहीं," उसी उदास स्वर में एक झटके से रेको बोली—"अब तो उठ-बैठ भी नहीं सकता। आठ दिनों से अनाज का एक दाना उसके पेट में नहीं गया, और···"

उसी समय हवा का रुख बदलने के कारण बाज़ार का सारा शोर जैसे इधर ही बह आया। कुछ दूरी पर बँधे लड़ाई के बड़ी कलगी वाले मुर्ग़े ने डैने झटक-कर बाँग दी और ऊपर आम की कई-कई टहनियाँ शराबी जैसी झूम उठीं। नारा-

यणपुर का एक कपड़े वाला व्यापारी हाथ में रेडीमेड बनियाइनें लिए पुकार-पुकार कर ग्राहक खींच रहा था । सामने की एक दूकान के निकट कुछ युवा लड़कियों का समूह ललचाई आँखों से माला-मूँगों के ढेर की ओर ताक रहा था । चूड़ियों की दूकान के सामने बैठी दो युवतियाँ दूसरी ओर मुँह मोड़कर होठ-भौं सिकोड़ती हुई चूड़ियाँ पहिन रही थीं । हवा में सूखी मछलियों की गंध समाई हुई थी ।

लाली का प्रसंग फिर से जी उदास कर गया । रेको को छोड़ आने के बाद भी मन का कुहासा तब तक नहीं छँटा जब तक कि मूसा सेठ की दूकान न आ गई ।

मूसा सेठ की दूकान सचमुच खासी बड़ी थी । ज़ीरा-धनिया से लेकर आइना कंघी तक और छोटे-छोटे रूमालों, रेडीमेड कपड़ों से लेकर नमक-मिर्च तक । दूकान के सामने स्वभावतः युवक-युवतियों की भीड़ अधिक जमा थी और उन्हें निबटाता हुआ बीच में केवल एक अठारह-बीस बरस का युवक बैठा हुआ था । अजीब संयोग कि मूसा सेठ तब भी वहाँ नहीं था । लेकिन उसके न होने से जरा भी कोफ़्त नहीं हुई क्योंकि दूकान पर एड की सारी डाक धरी थी ।

—"मामू ने कहा है," दूकान पर बैठे युवक ने बताया—"कि आप आएँ तो यह डाक मैं आपको दे दूँ क्योंकि उनका कुछ ठीक नहीं कि कब तक दूकान आएँ ।"

उनका याने मूसा सेठ का, पता लगा युवक दामाद मियाँ हैं और एक-दो बरसों से घर-जमाई होकर रह रहे हैं । एड ने उसकी बातों पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया । जवाब में एक भी शब्द कहे बिना वह डाक की ओर भूखों की तरह झपटा मानो चिट्ठी-पत्री न होकर वह कोई बढ़िया पकवान हो ।

यह सह-अनुभूति कितनी कठिन है ! थोड़े समय के लिए ही सही, बाहर की सारी दुनिया से कटा-छटा यदि मैं ओरछा में न रहता तो उस अनुभूति को सही-सही शायद मैं भी न पकड़ पाता । मित्रों-परिचितों के पत्रों का महत्व होता है यह मैंने उसी क्षण जाना । जब चिट्ठियाँ छाटने के लिए एड डाक उलट-पलट रहा था तो उस समय मेरा जी धड़क रहा था मानो वह परीक्षा की घड़ी हो और मुझे डर लग रहा हो कि जाने मेरा क्या होता है । कई दिनों की डाक थी सो मामूली न थी । उतने रोज के 'डेली' कुछ पत्रिकाएं 'टाइम' 'एन्काउंटर' आदि और देश विदेश के अनेक पत्र जिनमें कठिनाई से एक पत्र ही मेरा था...

—"लाओ"...

उबरकर जैसे गद्-गद् स्वर में मैंने एड से कहा । कुछ तो इसलिए कि पते पर धनंजय की लिखावट मैंने साफ-साफ पहिचान ही ली थी । संभवतः जिस क्षण मेरा जी काँप रहा था अंतश्चेतना संभवतः में यही बात रही हो कि मैं धनंजय के पत्र की राह देख रहा हूँ । उसे देखे या उसकी आवाज़ सुने कितने दिन हो गए ! जल्दी से लिफाफा खोलकर मैंने पत्र निकाल लिया—। प्रियजनों के पत्र छोटे हों

या बड़े, बार-बार पढ़े जाते हैं। एक बार पढ़कर या तो मन को तसल्ली नहीं होती या शायद उन वाक्यों की हर दुहराहट पर आँखें इस उम्मीद से बार-बार गुज़रती हैं कि कोई-न-कोई शब्द या जुमला नया अर्थ दे जाय।

पत्र बेहद लम्बा था—फुलस्केप साइज के पूरे चार पृष्ठ जिनके संग-संग मेरा अपना नगर सजीव होकर उठ आया था—

····"और तुम्हारा नगर बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि तुम छोड़ गए थे। डाकखाने से लेकर थाने तक जानेवाली वही गुलज़ार सड़क जो शाम-शाम को कुछ निखर जाती है। दण्डकारण्य-योजना व रेलवे प्राजेक्ट से नगर की ज़िन्दगी में महँगाई चाहे जितनी बढ़ गई हो, एक चीज़ की प्रसन्नता नवयुवकों को जरूर होनी चाहिए। वह यह कि गोल बाज़ार के आसपास अब सौंदर्य व शरीर खूब जी भर-कर देखने को मिलता है। तुम स्वयं जानते होकि कुआँरों की दृष्टि में जिज्ञासा होती है और विवाहितों की नज़र में लालसा। इसके अलावा दूसरे की पत्नी को देखने का सुख क्या साधारण होता है?

नगर की रोज़मर्रा ज़िन्दगी में वही टुच्चापन है जिसे जन्म से तुम देख रहे हो। सम्भ्रान्त नागरिक आज भी पान की दूकान के सामने खडे होकर घंटों गुज़ार रहे हैं मैदानों में फुटबाल-मैच देख रहे हैं, क्रिकेट की कमेंट्री सुन रहें हैं या आगाथा क्रिस्टी के नावेल पढ़ रहे हैं। कुछ समाज-सेवी वकील व स्वतन्त्रता के बाद के देश-भक्त नेतागण बराबर सेवारत हैं क्योंकि सेवा से ही मेवा मिलती है।

···और इन सबके बीच मैं कितना अकेला महसूस करता हूँ, कैसे कहूँ? पहिले जब इस नगर में नहीं आया था तो सोचता था कि मेरे मन में यहाँ की मिट्टी के लिए मोह है। तुम जब तक साथ बने रहे यह भावना नहीं बदली थी लेकिन अब सोचता हूँ तो लगता है कि यह बात नहीं है। क्या उस सारे मोह के पीछे केवल-मात्र तुम्हारा साथ रहना नहीं था?

और हाँ, एक बात न लिखूँ तो तुम शायद मुझे कभी क्षमा न करोगे। उस दिन 'र' मिली थी। इधर-उधर की बातों के बाद बड़ी कठिनाई से उसने पूछा कि तुम कब आ रहे हो। सच मानना मैंने स्पष्ट देखा कि प्रश्न करते समय उसकी आवाज काँप गई थी। फिर उसके चली जाने के बाद बड़ी देर तक सोचता रहा कि वह क्या केवल यहीं पूछने नहीं आई थी?"···

मैंने घबराकर चिट्ठी बंद कर दी। एड मेरी ओर देखकर मुस्कुरा रहा था। इस बीच अपनी सारी चिट्ठियाँ पढ़-पढ़ाकर वह 'टाइम' के पन्ने पलट रहा था। उसे यूँ मुस्कराते हुए देखकर मैं एक क्षण के लिए सकपका गया था। क्या एड ने जान लिया कि पत्र में क्या लिखा है? फिर अपनी शंका और मूर्खता पर खुद ही हँसी आई।

—"वर्मीज ?" एड ने पत्र की ओर इशारा करके पूछा।

—"या !"

—"व्हाट डज इट से ?"

हँसते हुए, गोल-गोल जवाब देकर मैंने वह प्रश्न टाल दिया।

—"फिलिस ने तुम्हें याद किया है," क्षण भर बाद एड बोला—"वह लखनऊ से लौट रही है।"

"कब ?"

—"इस महीने के अंत तक।"

मेरे मन में उस समय भी पत्र का वही वाक्य गूंज रहा था—वह क्या केवल यही पूछने नहीं आई थी ? यही पूछने नहीं आई थी...? फिलिस के लौटने वाले समाचार पर अपनी प्रसन्नता इसीलिए बड़ी औपचारिक-सी लगी।

बाज़ार अपने पूरे यौवन पर आ चुका था। मूसा सेठ के दामाद को अब हमारी ओर देखने का भी अवकाश नहीं था। माला-मूँगों, कपड़ों और चूड़ियों से भी अधिक बिक्री नमक की थी—जितने भी दूकानदार थे, सब बुरी तरह व्यस्त। अपने लिए जो भी थोड़ी बहुत खरीद-फरोख्त करनी थी, अमरसिंह कर रहा था अतः हम लोग मुर्ग-लड़ाई देखने के लिए उठ आए।

मुर्ग-बाज़ी आदिवासियों का कितना अनोखा-सा मशग़ला है।

बाज़ार से थोड़ा हटकर खुले मैदान में लोगों का एक गोल घेरा बन जाता है। उस घेरे में सभी तरह के लोग होते हैं—लड़ाई में हिस्सा लेने वाले, उन्हें प्रोत्साहित करने वाले दोस्त अहबाब, महज तमाशबीन और मुर्गों की हार जीत पर सट्टा खेलने वाले कई शौक़ीन।

पहिले लड़ाई में भाग लेने वाले लोग अपने-अपने बहादुरों को गोद में उठाए जोड़ की तलाश में भटकते हैं। हर एक व्यक्ति अपने मुर्ग को दूसरे के निकट छोड़कर पहिले दोनों की शक्ति तोलता है। यदि जोड़ बराबरी का हुआ और दोनों बाज़ी के लिए तैयार हुए तो मुर्गों के एक-एक पाँव में छोटी-छोटी काती (छुरियाँ) बाँधकर मैदान में छोड़ दिया जाता है जहाँ फैसला होने में दो-चार मिनट से अधिक नहीं लगता।

जिस क्षण हम लोग घेरे में जाकर खड़े हो गए, उसी समय एक बाज़ी शुरू हुई थी। मेरा ख्याल है उस लड़ाई के फ़ैसले में कठिनाई से आधा मिनट लगा होगा। मैदान में छूटते ही अपनी-अपनी गर्दन फुलाकर पल-भर के लिए वे दोनों मुर्ग़ एक-दूसरे को घूरते रहे। फिर अचानक हवा में उनके शरीर उछले और दूसरे क्षण एक ज़ोर की चीख़ के साथ एक लहू-लुहान मुर्ग़ जमीन लोटने लगा। काती शायद सीधे उसके कलेजे के पार हो गई थी, फड़फड़ाता हुआ वह तीन-चार बार हवा में उछला और घेरे के पार गिरकर ठण्डा हो गया।

घेरे में उस मौत की कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। सिवाय इसके कि दो-चार

लोग उस मुर्ग़ को अभाग्य पर हँसने लगे जो केवल एक बार में साफ हो गया था। पर अधिकांश लोगों ने शायद ध्यान भी नहीं दिया क्योंकि एक जोड़ के हटते ही फौरन दूसरा मैदान में उतर आता और कई बार दो-दो या तीन-तीन जोड़ लड़ाई में लगे होते।

थोड़ी देर बाद चीर-फाड़ लहू और मौत के उस घेरे में मैं पीछे खिसक गया और एक पेड़ के नीचे बैठकर एड की प्रतीक्षा करने लगा।

बाज़ार को चुपचाप बैठे देखते जाओ तो कभी ऊब नहीं होती। दृश्य का छोटे-से-छोटा टुकड़ा कितना परिवर्तनशील होता है! हर निगाह जो उठती है तो नया चेहरा ही देखकर लौटती है। मैंने आँखें मूँद लीं। लगा कि बाज़ार का शोर और तेज़ होकर कानों में भरता जा रहा है और सूखी मछलियों की सड़ी हुई गंध नासापुटों की बारीक-बारीक रगों को आहिस्ते-आहिस्ते छील रही है···

मुझे पूछने वाली 'र' का चेहरा गोल और मांसल है। छिलका उतरे कोसुम-जैसे रंग का दहकता मुख जिसे उसकी सपनीली आँखें हमेशा ढँके होती हैं। अजीब बात है कि कल्पना करने पर सबसे पहिले मुझे अपने पपोटों पर उन ख़ार-जैसी नोकीली पलकों का गड़ाव महसूस होता है और उसके चेहरे के नुक़ूश बड़ी देर बाद लौटते हैं। कई बार लगता है कि 'र' में केवल आँखें ही आँखें हैं। वह अपनी ओर उठी उन लम्बी-लम्बी पलकों का बेवजह और दम-पे-दम झपकाव जैसे धूप-छाँव हो जाए और छाँव धूप!

जिस दिन 'र' से पहिली बार भेंट हुई थी ऐसा ही लगा था। कई दिनों बाद मैंने ईमानदारी बरतनी चाही। जी कड़ा करके साहस किया और अपनी अनुभूति की बात कह दी तो उसके चेहरे की प्रतिक्रिया आशा के अनुरूप नहीं लगी। वह उसी तरह संजीदा बनी रही फिर मुस्कुराकर धीरे से इतना ही बोली—"भाई, तुम शायर लोग हो जाने क्या-क्या सोच लेते हो, हमारे पल्ले तो कुछ नहीं पड़ता।"

उसके बाद कहने को क्या रह जाता है? उस दिन मैं जो चुप हुआ तो फिर कभी मेरी ज़बान नहीं खुली। तब भी नहीं जब ऐसे कई अवसर आए—हम लोग दोनों अकेले हैं, बाहरी बातें सब चुक गई हैं, रह-रहकर एक-एक मिनट का मौन पड़ जाता है और 'र' इतनी प्रसन्न है कि जाने-अनजाने अपने-आपकी झलक दे-दे जाती है।

मैं हँसकर कहता हूँ—"देखो, तुम बहक रही हो।"

—"क्यों?" आँखों को ज़रा-ज़रा फैलाकर वह शरारत से पूछती है—"क्या मेरी बातों में नशे की बू आ रही है?"

—"नशा न सही, लड़खड़ाहट तो है ही ।"

—"नहीं, नहीं । वह पूरे आत्मविश्वास से मुस्कुराकर कहती है—"मैं अपने क़दम खूब पहिचानती हूँ ।

फिर सहसा उसकी आवरणहीन लीची-जैसी गर्दन में, पीछे की लाल रिबन टँकी दोनों चोटियाँ आकर झूल जाती हैं और मुझे अपना-आप लहू-लुहान लगता है ।

—"चलो, चलें..."

अचानक निकट आकर मुझे लौटते हुए एड ने कहा ।

—"कहाँ ?" मैंने आँखें खोल दी थीं ।

—"वापस ओरछा," उसने कहा—"अमरसिंह भी आ गया है और अब मूसा सेठ से मुलाक़ात नहीं होगी ।"

दोपहरी ढल चुकी थी । बाज़ार अब बिखराव पर आ गया था । दूर-दराज़ के लोग लौटने की तैयारी कर रहे थे और हमें भी शाम से पहिले ओरछा पहुँचना था । मुर्ग़बाज़ों के घेरे में अब वह उत्साह नहीं रह गया था । आस-पास के पौधों और छोटे-छोटे बूटों से कई विजयी व घायल कलग़ी वाले मुर्ग़ बंधे थे और उन्हीं के निकट-पास पड़े थे अनेकानेक पराजित शव ।

नौ

दूसरे दिन की भरी-पूरी दोपहरी झूठी हो गई जब माड़िन नदी की ओर से गाँव की दो युवतियाँ कपड़े-लत्ते का होश छोड़कर, चीख़ती-चिल्लाती बेतहाशा भागी-भागी आईं और हमारी कॉटेज के पास गिरकर बेहोश हो गईं ।

हम लोग खाना खाने के बाद बाहर ही निरुद्देश्य बैठे हुए थे । एड 'टाइम' का नया अंक उलट रहा था और मेरे पास कोई काम नहीं था । पहिले-पहल हमारी समझ में कुछ नहीं आया । माड़िन नदी की ओर से अचानक दो मिली-जुली व घबराहट से भरी चिल्लाने की आवाज़ आई । जब तक कि कुछ सोचने की कोशिश करें, दो युवतियाँ जैसे-तैसे दौड़ती नज़र आईं और फिर यही देखा कि ठीक हमारी कॉटेज के पास वे आकर गिर गईं ।

हालाँकि हमारी कॉटेज माड़िन नदी के सबसे पास पड़ती थी लेकिन इससे भी पहिले रास्ते में लस्के का घर था । संयोग की बात कि यह भी घर पर था और लड़कियों को वैसी बदहवासी से चिल्लाते व भागते देखकर उसने भी आवाज़ दी थी । लेकिन वहाँ सुनकर रुकने का साहस किस में था ?

लपककर हम लोगों के पहुँचते तक लस्के भी वहाँ आ चुका था और घबराया-सा पूछ रहा था—"क्या हुआ ? क्या हुआ ?"

दोनों युवतियों से एक की हालत बहुत ख़राब थी । बदन का रहा-सहा कपड़ा तार-तार हो रहा था, बाहों और शरीर के दूसरे हिस्से में कांटों की कई-कई खराशें नजर आ रही थीं और शायद राह में गिर पड़ने के कारण एक घुटना बुरी तरह छिल गया था । दोनों की नंगी छातियाँ धौंकनी की तरह जल्दी-जल्दी चल रही थीं और उनमें से एक पूरी तरह होश में आ जाने के बाद भी बोल नहीं पा रही थी । वह केवल अपने पास खड़े लोगों को बट-बट देखे, हाँफे और रोए जाए···

—"बोलती क्यों नहीं ?" आखिर जब लस्के से नहीं रहा गया तो चिल्लाकर डाँटते हुए उसने कहा—"हुआ क्या जो इस तरह मरी जा रही हो ?"

लड़की पर फिर भी कोई भी असर नहीं हुआ । एक बार डरी हुई आँखों

से ताककर वह फिर रोने लगी तो एड ने स्थिति सम्हाली। आगे बढ़कर उसने लस्के को चुप करवाया और लड़की के निकट बैठकर सहानुभूतिपूर्वक पूछने लगा कि वास्तव में क्या हुआ।

—"कोसी···"

बड़ी कठिनाई से उसके मुँह से आवाज़ निकली और वह रोने लगी।

—"क्या हुआ कोसी को ? हाँ···बोल, क्या हुआ कोसी को ?"

तब तक आस-पास के घर वाले मासा, कैंये और अन्य कई परिवार के स्त्री-पुरुष व बच्चे सभी जमा हो गए थे। क्षण-प्रति-क्षण बढ़ती भीड़ देखकर दूर के घरवाले भी भागे आ रहे थे।

सहसा इतनी बड़ी भीड़ से अपने को घिरा हुआ पाकर किसी की भी घबराहट का और बढ़ जाना स्वाभाविक था। लड़की ने काफी हाँफने के बाद केवल एक शब्द का उच्चारण किया—"बाघ।"

और बस।

वैसे उसके आगे कुछ बताने की भी आवश्यकता नहीं थी। व्हीले जो सबसे आगे घबराया-सा खड़ा था अचानक ज़ोर से चिल्लाया—

—"कहाँ ाँ ाँ ाँ ?

यकबयक सबके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं और क्षण-भर के अन्दर सारे गाँव में खलबली मच गई। उस घबराई हुई लड़की ने दो शब्दों के उच्चारण से जिस अप्रत्याशित घटना का संकेत किया था उसके पहिले की कथा व्हीले और कुछ गाँव वालों को मालूम थी—नित्य की तरह लगभग बारह बजे खाने आदि से निबटकर कोसी व गाँव की दो अन्य लड़कियाँ पत्ते तोड़ने के लिए वन गई थीं। पत्तों के लिए जाना ही कितनी दूर पड़ता है ? माड़िन नदी से लगे हुए शाल के जंगल में तो बच्चे भी खेलते-खेलते पहुँच जाते हैं। आबादी से बमुश्किल डेढ़-दो फ़र्लांग दूर। आगे घटना का सम्बन्ध अनुमान से ही जुड़ जाता है। तीनों युवतियाँ अलग-अलग फैलकर निश्चित पत्ते तोड़ने में लगी हैं। पीछे झाड़ियों से अचानक बाघ निकल आता है—कोसी के बहुत पास। किसी एक लड़की की निगाह पड़ते ही वह चिल्लाती है। चौंककर दूसरी लड़की भी देखती है। सब-कुछ वहीं छोड़कर बेतहाशा चिल्लाती हुई वे दोनों भागती हैं। एक क्षण के लिए हक्का-बक्का होकर कोसी स्तम्भित रह जाती है फिर चीख मारकर भागने का प्रयास करती है लेकिन उससे हज़ार गुना फुर्ती से बाघ उछाल मारता है और दूसरे क्षण कोसी का कोमल शरीर बाघ के खूँखार पंजों में आ जाता है। एक हृदयविदारक चीत्कार और बस···

एड ने असहाय आँखों से मेरी ओर देखा। मैं अधिक भयभीत था या द्रवित, यह कह सकना मुश्किल है। लग रहा था जैसे बाघ माड़िन नदी के पार न

होकर गाँव में घुस आया है और हम सबका अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। लग रहा था जैसे कोसी बाघ के पंजों में नहीं मेरे सामने बैठी है—उसी तरह खुली और निश्छल। लड़कियाँ उसे उठाकर सोने के लिए ले जाना चाहती हैं लेकिन वह नहीं हटती। अँगीठी पर हथेलियाँ फैलाकर हँसती हुई बैठी है और व्हीले की चुहल से लजाकर किसी भी पल भाग जाएगी।

—"अब ?...." कुछ देर बाद मैंने एड से पूछा।

—"देखो, गाँव वाले क्या करते हैं।"

—"तब तक तो कोसी दूसरी दुनिया में पहुँच चुकेगी।" मैंने बुतेकी-सी बात कही हालाँकि मैं जानता था कि गाँव वाले भी जाकर अब उसे नहीं बचा सकते।

—"तुम क्या समझते हो कि बाघ के मुँह में भी पहुँचकर वह अब तक जिन्दा होगी ?" एड फीके ढंग से हँसा और अपनी मूर्खतापूर्ण बात के लिए पछताकर मैं चुप हो गया।

लाख जल्दी मचाने और भाग-दौड़ के बावजूद दो घंटे और लग गए। गाँव के अधिकांश पुरुष पहाड़ियों या खेतों की ओर निकल गए थे। उनमें से पटेल भी एक था। कोसी के घर का प्रमुख पीरचे भी नहीं था अतः उन सबके आने की प्रतीक्षा करनी पड़ी। जब उनके साथ-साथ और काफ़ी लोग जमा हो गए तो ढोल, खाली पीपे, आवाज करने वाले बर्तन, आग, तीर-धनुष, फरसा तथा कुल्हाड़ी आदि से लेस एक बड़ा-सा समूह वन की ओर बढ़ा।

तब सूरज पश्चिम की ओर काफी ढलक गया था। आकाश में बादल नहीं थे और धूप बिल्कुल साफ़ पड़ रही थी। अँधेरे के आने में अभी घंटों की देर थी लेकिन महसूस हो रहा था जैसे ओरछा-वासियों के बीच शाम हो गई है। माड़िन नदी के कगार के नीचे जल शांत सोया हुआ था—उसकी एक धार कुछ दूर पर राह-पड़ी चट्टान से उसी तरह शोखी कर रही थी। उस पर बाँस की झाड़ियों की अनगिनत क़तार पीली पड़ती-सी वैसी ही झुकी हुई थी। शालवनों के ऊँचे-ऊँचे पेड़ पहिले की तरह आकाश में सिर उठाए खड़े थे और नित्य की तरह ही दिन जा रहा था। सब-कुछ वैसा ही, जैसे कल था या जैसे कुछ घंटों पहिले था। स्वय कोसी इसी राह से गई थी। रेत पर पड़े कई चिह्नों में से कुछ निशान उसके पाँव धरने के भी होंगे। आगे आने वाले पल से बिल्कुल अज्ञात, नदी, चट्टान, वन और पेड़-पौधों को उसने इसी तरह देखा होगा। तब उसे क्या मालूम था कि उन सबको वह अन्तिम बार देख रही है। एक अप्रत्याशित घटना अचानक आकर एक क्षण में घट गई और एक युवा-प्राण संसार से उठ गया !

माड़िन नदी का दूसरा तट पार करते ही छोटी-सी पहाड़ी आती थी। दरअसल, वह पहाड़ी नहीं थी, पहाड़ी का ढलवान वाला आखिरी हिस्सा थालेकिन

उसकी चढ़ाई के लिए भी घुटनों पर हाथ रखना पड़ता था।

जैसी ही उसकी शुरुआत हुई सारा समूह सतर्क होकर चलने लगा। लोग एक-दूसरे के बहुत पास-पास होकर शोर-शराबा करने लगे—ज़ोर-ज़ोर से ढोल पीटा जा रहा था, खाली पीपे और बर्तन बजाए जा रहे थे, पूरी ताक़त से चीख मारी जा रही थी और ऐसी हर हरकत हो रही थी जिससे कि यदि आस-पास कहीं हो तो आदमखोर बाघ दूर हट जाए या एकाएक हमला करने का साहस न कर सके।

एड ने रायफल रख ली थी। एहतियातन एक बन्दूक मेरे हाथ में भी थी लेकिन उसका होना न होने के बराबर था। जिसे बन्दूक पकड़ना ही न आए ऐसे व्यक्ति के लिए उस प्राणघातक शस्त्र का मूल्य डंडे से भी कम होता है—मेरी वही स्थिति थी।

चढ़ाव के बाद वाले समतल मैदान में अधिक दूर नहीं जाना पड़ा। पगडंडी के समाप्त होते ही एक खुला हुआ टुकड़ा आया और उसके साथ ही नज़र में आकर ठहर गया वह स्थल, जहाँ कुछ घंटों पहिले कोसी की चीत्कार उमड़कर दिशाओं में गूँज गई थी।

एक छोटे-से शाल पेड़ के पास, भरी बाल्टी से छलके जल की तरह कोसी का रक्त लुटा पड़ा था! एकाध गज़ की दूरी पर दो-चार टूटी हुई चूड़ियाँ बिखरी थीं और एक छोटे-से जंगली बूटे की टहनियों में उसकी गर्दन की मालाएँ जा अटकी थीं।

सभी भयभीत, आंतकित और उदास आँखें उन चिह्नों को देख रही थीं, केवल मैं एक क्षण बाद व्हीले को देखने लगा था। देख रहा था कि वह क्या देख रहा है. लेकिन क्या सचमुच ?

फिर सारे समूह ने वही हल्ला मचाना शुरू किया, ढोल-पीपे व बर्तन बजने लगे और लोग अजीब-अजीब आवाजों व शोर के साथ एक निश्चित दिशा की ओर बढ़े। कोसी के शरीर से छूटे हुए रक्त की सूखी धार ने ही राह दिखा दी। वह दिशा जो बन-घास, सियाड़ी, भूलन व कांटाकुली की लताओं पर से होकर नीचे से ऊपर और ऊपर की पहाड़ी पर पहुँचती थी। उस पहाड़ी पर जहाँ के एक खूब चौड़े और साफ़ चट्टान पर कोसी की नंगी देह पड़ी थी—मृत, लहू-लुहान अस्त-व्यस्त और ऐसे रूप में जिसकी मैंने कभी भी कल्पना नहीं की थी। अगर मुझे पूर्व-घटना या कथा मालूम न होती तो क्या मैं पहिचान सकता था कि वह कोसी है? उसके सिर के सारे बाल बाघ ने चाटकर साफ़ कर दिए थे जिसके कारण खोपड़ी चिकनी हो गई थी और मुँह लहू से ऐसा सन गया था कि चेहरे की एक भी रेखा स्पष्ट न थी।

"—पूअर लिटिल थिंग!" एड ने साँस भरकर कहा।

मुझसे कुछ कहा नहीं गया। मौत सभी को आती है। किसी को जल्दी, किसी को देर से। लेकिन कुछ के भाग्य से उसका आना ऐसा होता है कि जी दहल जाता है। क्षणकाल के लिए जीवन की सारी निस्सारता मेरे सामने खड़ी होकर ठहर गई। मुझे लगा कि मेरा हृदय बुरी तरह डूब गया है और हर क्षण मेरा आकार छोटे-से-छोटा होता जा रहा है। यहाँ तक कि अन्त में शरीर या आकृति का कुछ भी नहीं रह जाता। लगता है, केवल वह निराकार शक्ति बची है जो यह सोचती रह जाती है कि वास्तव में वह है भी या नहीं···?

उस रात बड़ी देर तक नींद नहीं आई। खाने की मेज़ से भी हम लोग जल्दी उठ गए और ऐसी कोई बात नहीं हुई जिसे बात कही जा सके। एड ने दोनों के प्यालों में चुपचाप व्हिस्की डाली, 'प्रान्स' का टिन खोला और उस मछली के नमकीन स्वाद के साथ हम लोग अपना-अपना गिलास पीने लगे। शायद और दिन होता तो एड मुझसे एक-दो पेग और पीने का आग्रह करता लेकिन उस क्षण जैसे वह मेज़ पर था ही नहीं। ज़रूरत के चन्द शब्दों को छोड़कर अलबत्ता उसने एक बात कई बार कही कि यह सब सुनकर फिलिस को बेहद दुख होगा। कोसी तो गाँव की सबसे सुन्दर लड़की थी!

और मैं क्या सोच रहा था?

किसी परिचित युवा लड़की की अकाल मृत्यु से मन पर धक्का लगना स्वाभाविक है लेकिन शिकार वाली रात कोसी को उस रूप में न देखा होता तो यह उदासी शायद इतनी गहरी न होती।

खाने की मेज़ से उठकर एड अपने कमरे में चला गया। पेट्रोमेक्स के पास बैठा थोड़ी देर वह पुराने नोट्स टाइप करता रहा, फिर उसे अधूरा छोड़कर कोई मैगज़ीन उलटने लगा। दस मिनट बाद उससे भी ऊबकर उसने कपड़े बदले, पेट्रोमेक्स बुझाया और चारपाई पर जा लेटा।

वही पहाड़ी सर्दियों की रात जिसमें माड़िन नदी से धुलकर हवा आती थी—बाहर कोहरे में ठिठरता हुआ माहौल जिसमें रह-रहकर खेतों में चरते चीतल-साँभर की आवाज़ डूब जाती थी। काफी देर तक एड के कमरे से चारपाई बजने की आहट आती रही। एक करवट कठिनाई से मिनट-दो-मिनट चलती फिर उसे बदलना पड़ता। आधी रात से ज़्यादा गुजरते तक वह तीन बार बाहर निकला। दो बार बाहर जाने के लिए और एक बार घड़े तक पहुँचकर पानी पीने के लिए।

आखिर लाख-लाख कोशिश के बाद मुझे भी नींद आई लेकिन जैसे डरती-और उचटती-सी। आँख लगती, कुछ देर के लिए मैं सो भी जाता लेकिन जैसे ही वह दृश्य हॉण्ट करने लगता घबराहट में मेरी आँखें खुल जातीं और उतनी सर्दी के बावजूद लगता मानो मेरा सारा शरीर पसीने में भींग गया है!···

तीसरी सुबह 'देवान' के पवित्र 'रावल' में गाँव के बड़े-बूढ़े तथा कुछ बुजुर्ग लोग इकट्ठ हुए—आतंकित, भयभीत और बेहद घबराए हुए···यह आपत्तिकालीन 'पेन-लस्किताल' था जिसमें प्रत्येक घर का प्रमुख पूरी श्रद्धा-आस्था के साथ देवता के चरणों में समर्पित हो जाता है। गिड़गिड़ाए हुए स्वर में प्रत्येक की केवल एक विनम्र प्रार्थना है—'हे देवाधिदेव, जंगल ही हमारा जीवन है। तेरे ही आसरे पर हम लोग अकेले-दुकेले, दूर-दूर तक निकल जाते हैं पर कभी कुछ नहीं होता। तेरे सम्मान में हम लोग किसी प्रकार की कोई कमी नहीं करते। लेकिन इसके बावज़ूद यदि तू रुष्ट है तो जरूर कोई कारण होना चाहिए। हम अभागों से ऐसी क्या भूल हो गई कि दिन दहाड़े गाँव में आमदखोरा बाघ घुस आया है ?'

रिवाज़ के मुताबिक गाँव के लस्के ने अपनी देह में देवता 'देवान' को बुलाया और उसकी आराधना करते हुए भेंट चढ़ाई गई—अंडे, लाली, कुछ चावल, एक छोटा-सा चूज़ा, शराब, लोहे के किसी टुकड़े से पिसे हुए अंडे के खाली छिलके, घास की पत्तियाँ और मयूर-पंख···

दस

फिलिस आई तो गाँव की ज़िन्दगी में छाई महीनों की एकरसता टूटी। उसके पहुँचते ही मिलने तथा कुशल-क्षेम पूछने के लिए सारा गाँव उमड़कर कॉटेज के सामने इकट्ठा हो गया। मिलने-जुलने का वह सिलसिला लगभग दो घंटे चलता रहा और इक्के-दुक्के लोगों की आवाजाही शाम तक बनी रही।

मुझे फिलिस से ईर्ष्या हो गई। इतने सारे लोगों का ऐसा प्यार पाना क्या सब किसी के भाग्य की बात हो सकती है ? उसके लिए सबसे पहिले शायद नारी होना पड़ेगा—ऐसी नारी जिसमें फिलिस-जैसे गुण हों। वह पच्चीस वर्षीय कमनीय शरीर, कटे हुए सुनहरे बाल और नीली आँखों वाला ऐसा रूप जिसके तराशे प्याज़ी होठों पर आठों-पहर मुस्कान रची होती थी। मुझे अक्सर लगा है कि फिलिस शरीर से चाहे अमरीकी हो मन से भारतीय है और वह भी ऐसी भारतीय महिला जो छोटे-छोटे नगरों या क़स्बों में रहती हैं। वही अकृत्रिम व्यवहार, सीधा-सादा मिजाज़ और बात-बात में घरेलूपन की महक ! वही विशिष्ट भारतीय स्वभाव जिसके अनुसार हर एक दूसरे से रिश्ता जोड़कर बातें करता है। गाँव में कोई काका है, कोई दादा है, कोऊ फूआ या कोई आता।

माड़ियों की अपनी बोली गोंडी में कभी सीख नहीं पाया। या तो मुझे वैसे अवसर नहीं मिले या मैंने कोशिश नहीं की। दोनों ही स्थितियों में दोष मेरा है और यह कुंठा मन पर बराबर बनी रही है। यह बढ़कर मुझे तब कचोटने लगी जब एड या फिलिस को गोंडी बोलते सुना। पहिले कितना अजीब लगा था ! ऐसे विदेशियों के मुँह से गोंडी, जो हिन्दी न बोल पाते हैं, न समझ पाते हों, कितनी प्यारी लगती थी ! जी करता था कि ओरछा के किसी घर-आँगन में बैठकर एड या फिलिस गोंडी में बातें करें और मैं चुपचाप सुनता रहूँ।

ऐसा प्यार हर उस बार उमड़ा है जब नंगे बदन केवल एक निकर पहिने एड को गाँव के घर-घर घूमते देखा है अथवा उसे सिर पर एक पगड़ी बाँधे, बीड़ी पीते हुए उनके समूह में मिलकर नाचते-कूदते···

—"हीज़ क्रेज़ी !" ऐसे अवसरों पर हँसकर, निहायत ममतापूर्वक

फिलिस कहती और उसकी आँखों का प्यार गहरा जाता। मुझे लगता जैसे क्रेज़ी कहने के बहाने उसने 'लवली' कहा हो।

सबसे मिलने-जुलने और गाँव भर का दुख-सुख जानने के बाद फिलिस ने अपनी कॉटेज की खबर ली। चीते के हमले के बाद दड़बा सूना ही पड़ा था। उसकी पाली हुई मुर्ग़ियों का एक चूज़ा भी न था। पीछे के आँगन में उसने टमाटर के पौधे लगाए थे, उसकी वैसी हिफ़ाज़त एड से न हो सकी। सामने पोर्च के नीचे कुछ गमलों में क्रोटन, कैक्टस और रजनीगंधा के पौधे सहेजकर सजाए गए थे—गनीमत कि अमरसिंह ने उनका बराबर ध्यान रखा वर्ना शायद उसके लिए एड को क्षमा भी न मिलती। अजीब बात है कि उसी रात पुसाल भी जैसे सूंघती-सूंघती आ गई जिसे आने के बाद से फिलिस ने दस बार पूछा था। कम्बख़्त बिल्ली इस बीच जैसे राह ही भूल गई थी हालाँकि उसके लिए भी एड को दो-एक उलाहने सुनने ही पड़े कि उसकी ग़ैरहाज़िरी में अवश्य पुसाल के खाने-पीने की तकलीफ़ हुई होगी अन्यथा जो बिल्ली चौबीसों घंटे म्याऊँ-म्याऊँ करती डटी रहती थी वह इतने-इतने दिन न आए, क्या यह संभव है ?

फिलिस के लौटते ही गाँव की ज़िन्दगी में अचानक परिवर्तन हो जाय, यह अस्वाभाविक न था। अचरज तो तब हुआ जब अपने आने के तीसरे दिन जैसे कालिया को भी वह लेती आई। मुझे लगा जैसे बरसों बाद कोई बिछुड़ा हुआ मित्र अचानक आ मिला हो। श्याम कालिया को यूँ ओरछा में देख सकूँगा, यह तो मुझे गुमान भी न था।

दोपहर को हम लोग माड़िन नदी से तैरकर लौट रहे थे। लगातार दो घंटे खूब तैरने के कारण बुरी तरह थकावट महसूस हो रही थी और भूख अलग लग आई थी। पहिले दूर से देखा कि कोई सरकारी जीप स्कूल के पास आकर रुकी है। क्षण-भर बाद दो-तीन लोग उतरे और उनमें एक व्यक्ति हमारी कॉटेज की ओर बढ़ आया। पगडंडी पर जैसे-जैसे उसकी आकृति निकट आती गई वैसे-वैसे मेरी शंका यक़ीन में बदलती गई—वही औसत क़द, कश्मीरी गोरा रंग, बदन पर फ़बता हुआ साहबाना लिबास और चाल में ढली बेपनाह मस्ती। उसके चेहरे पर खूब सजती हुई फ्रेंच-कट दाढ़ी देखकर मुझे पूरा यक़ीन हो गया कि कालिया के सिवाय कोई दूसरा हो ही नहीं सकता।

—"हल्लो श्याम !" लपककर आधा फ़ासला मैंने स्वयं ही तय कर लिया और खूब कसकर हाथ मिलाता हुआ बोला—"तुम इस बियाबान में कहाँ ?"

दरअसल अपनी प्रसन्नता का अधिकांश हिस्सा मैं दबाए जा रहा था। कुछ तो संकोच के मारे कि कहीं मेरी बातें उसे बनावटी न लगें।

एक बार मुझे भरपूर आँखों से देखकर कालिया ने याराना लहज़े में कहा—"डीयर, अपनी ज़िन्दगी तो इस बियावान के लिए ही बनी है। तुम सुनाओ कैसे हो ? उर्दू का वह शेर है न, 'इसी उम्मीद पै मीलों चले जाते हैं दीवाने'…"

मैंने हँसकर उसे बाँहों में भर लिया। तब तक एड और फिलिस भी निकट आ चुके थे। बारी-बारी से उन लोगों से भी मिलकर वह बोला—"दरअसल मैं नारायणपुर तक आया था। सोचा कि इतनी दूर आकर भी तुमसे मिले बिना चला जाऊँ तो बेइंसाफी होगी।"

—"नारायणपुर कैसे ?"

—"क्यों ? अपने 'शेरों' को प्रेक्टीकल-ट्रेनिंग के लिए जंगल न जाऊँ ?"

शेर यानी 'ट्राइबल इन्स्टीट्यूट ऑफ़ छिंदवाड़ा' के विद्यार्थी। मैं तो भूल ही गया था कि कालिया रिसर्च आफ़िसर है।

—तो यूँ कहो, मैंने हँसकर कहा—"कि हलवाई की मिठाई में दादा की फ़ातिहा दी जा रही है !"

कालिया ठठाकर हँस पड़ा, बोला—

—"भाई, ज़रूरी फ़ातिहा है, यह देखना क़तई नहीं कि मिठाई कहाँ की है।"

फिर वही छोटी-सी कॉटेज कालिया के खुले ठहाकों और हम लोगों की हँसी से कितनी देर तक गूँजती रही यह कहना कठिन है। केवल यही याद रह गया है कि कालिया लगभग साढ़े-बारह-एक को पहुँचा था और बातों ही-बातों में तीन बज गए। इस बीच उसके जीप वाले साथियों ने दो बार संवाद भेजे लेकिन मैंने कालिया को जाने नहीं दिया। एड बराबर आग्रह करता रहा कि कालिया अपने उन साथियों को भी बुलवा ले लेकिन वह यह कहकर टाल गया कि वे सरकारी दौरे पर आए हैं अपने काम-आम में लगे होंगे। फिर इसके अलावा भी वे लोग सिड़ी क़िस्म के रेवेन्यू आफ़िसर हैं—अपने डिपार्टमेंट, सरकारी गतिविधियों और कलेक्टर के सिवाय और क्या बातें करेंगे ?

दोपहर का खाना कालिया ने हम लोगों के साथ ही खाया। जीप वाले सरकारी 'बहादुरों' को वैसी ख़बर भेज दी गई। मेरा ख्याल है कि उन लोगों ने बिल्कुल परवाह न की होगी। देखा, गाँव में थोड़ी-सी हलचल मची है—पटेल यहाँ-वहाँ दौड़ने में व्यस्त है, स्कूल मास्टर हाथ बाँधे खड़े हैं और एक-दो ओरछा-निवासी साहबों के लिए ज़रूरी चीज-वस्त पहुँचाने में जी-तोड़ मेहनत कर रहे हैं। बस्तर के गाँव में किसी सरकारी अफ़सर का दौरा मामूली बात नहीं होती। खासकर अबूझमाड़ के ओरछा जैसे गाँव में, जहाँ मुद्दतों कोई झाँकने भी नहीं पहुँचता।

—"आपकी रिसर्च और कितनी रह गई है ?" खाने की मेज पर कालिया ने पूछा।

—"बस, पूरी ही समझ लो," एड बोला—थोड़ा-सा काम रह गया है, दो-चार दिन में वह भी हो जाएगा। दरअसल, मैं फिलिस की ही राह देख रहा था।"

—"तो क्या चला-चली की बेला आ पहुँची ?" कहते हुए कालिया ने मेरी ओर देखा और हँस पड़ा।

—"और क्या ? फिलिस ने तो कल से पैकिंग भी शुरू कर दी है। हम लोग इसी सप्ताह निकल जाना चाहते हैं।"

मेरे लिए यह बात समाचार न थी। एड का काम वास्तव में समाप्त हो चुका था। पहिले दिनों जिस गति से काम चल रहा था, वह काम न था जैसे थोड़ी-सी व्यस्तता के बहाने फिलिस की प्रतीक्षा की जा रही थी। फिलिस के आने के बाद से इसीलिए छोटे-मोटे सामानों की पैकिंग शुरू हो गई है। चंद दिनों के मेहमान और···

—"सोचिए तो, हम लोग दो साल के बाद अपने देश वापस जा रहे हैं—दो साल।" फिलिस ने अत्यन्त भावुकता में भरकर कुछ आर्द्र से स्वर में कहा और दरवाजे के पार बाहर देखने लगी—"इतने अरसे बाद अपने प्रियजनों से मिलने की कल्पना ही मुझे सिहरा देती है। डैडी बूढ़े कमज़ोर हो चुके हैं, मैं उन्हें जल्द-से-जल्द देखना चाहती हूँ। अभी लखनऊ में मेरी छोटी बहिन का खत आया था। लिखा है कि मुझे देखने के लिए वह मरी जा रही है। सच कहूँ, ख़त में वहाँ के मौसम के बारे में पढ़कर मेरा मन ही यहाँ से उठ गया। यह सोचकर ही जी डूब-सा जाता है कि इन दिनों वहाँ मौसम कितना प्यारा हो गया होगा। आठों पहर बर्फ़ पड़ती होगी और जिधर निगाह फैलाइए रुई-जैसे सफ़ेद-सफ़ेद गाले चुपचाप उतरते और जमते दिखाई देते होंगे···ओह, यू कांट इमेजिन, हाउ आइम डायिंग टु सी देम आल !"

कालिया फिलिस के हिलते होठों की ओर निर्निमेष ताक रहा था, धीरे से मुस्कुराकर बोला—"लगता है, अमरीका पहुँचते ही यहाँ का सब-कुछ भूल जाने वाली हैं।"

—"क्यों ? नहीं, नहीं। यह कहकर आप हम लोगों के साथ ज़्यादती कर रहे हैं। आई लव दिस कंट्री, ऐंजवेल। यहाँ हमारे दो साल किस ख़ूबसूरती से गुजरे हैं, यह कह पाना आसान नहीं है। ओरछा को हम लोग सारी ज़िन्दगी नहीं भूल सकते। ख़ासकर कुछ परिवार के मासा-जैसे लोग जो हमें खूब चाहते थे।"

—"सच बात तो यह है," एड ने बीच में कहा—"कि ऐसे अवसर पर अपनी अनुभूतियों को ठीक-ठीक रख सकना काफी मुश्किल है। यहाँ से लौटने की

बात सोचते ही अजीब कशमकश का एहसास होता है। जहाँ से एक ओर घर लौटने की खुशी है वहीं दूसरी ओर इस बात का दुःख भी कि अब यह मुल्क छूट जाएगा। कितनी अजीब बात है कि जिस गाँव के दुख-सुख में दो बरस तक हम लोग यकसाँ होकर रहे, वहाँ अब कभी लौटकर नहीं आएँगे।''

वह सब एड कह रहा था लेकिन उन शब्दों की वेदना भरे मन में घिरी आ रही थी। भीतर कोई एक कोमल-सी अनुभूति घायल साँप की तरह सिर पटक रही थी—''अब कभी लौटकर नहीं आएँगे···अब कभी···।''

क्षण-भर की चुप्पी के बाद कालिया ने पूछा—''आप लोग बम्बई से 'सेल' करेंगे ?''

—''नहीं,'' एड ने फिलिस की ओर देखा—''हम लोगों ने करीब-करीब सारा उत्तरी भारत देख लिया है। पिछली गर्मी में मसूरी गए थे तब देहली-आगरा और उत्तर प्रदेश के कुछ भाग घूम आए। सोचते हैं, दक्षिण क्यों रह जाय। सो, हैदराबाद, मद्रास और सीलोन होते हुए लौटने का इरादा है।''

—''दैट्स गुड,'' कालिया ने फिलिस को देखकर कहा—''और आपकी लखनऊ की ट्रिप कैसी रही ? मुझे तो यह सुनकर ही बड़ा आश्चर्य हुआ कि बस्तर के घने जंगलों को छोड़कर बन्दरों के लिए आपको शहर की ओर जाना पड़ा और वह भी लखनऊ।''

—''कालिया,'' फिलिस के जवाब देने के पहिले मैंने कहा—''तुम शायद झूठ बोल रहे हो। तुम्हें आश्चर्य नहीं दुख हुआ होगा।''

—''क्यों ?''

—''तुम खुद भी लखनऊ के नहीं हो ?''

आदतन कालिया ठठाकर हँस पड़ा। एड के साथ-साथ अपनी गर्दन जरा-सी सीधी कर फिलिस ने एक खास अन्दाज से सिर को झटका दिया और बड़े लतीफ ढँग से हँस दी। फिलिस ने बताया कि रहती वैसे वह लखनऊ में थी लेकिन बन्दरों को आब्ज़र्व करने के लिए उसे रोज काकोरी नामक एक गाँव जाना पड़ता था। फिर विभिन्न प्रकार के बन्दरों के व्यवहारों, उनकी विशेषताओं, गुणों आदि की बातें···

खाने के बाद हम लोग धूप में कुर्सियाँ डाल कर बैठे। मैंने और फिलिस ने सिगरेट सुलगाई। कालिया काफी बड़ा एक सिगार जलाकर पीने लगा और उस मिले-जुले धुएँ की उमड़ती बदलियों बीच अकेले एड ही खाली होंठ बैठा रह गया। जैसे हम तीनों से बिल्कुल ही असम्बद्ध और कटा हुआ हो। इसी बीच कालिया के जीप वाले साथियों का एक सम्वाद और आया जिसे 'चलो, आते हैं' कह कर टाल दिया गया।

एड ने कालिया से कहा—"आप दो रोज बाद आए होते तो ज्यादा अच्छा होता।"

—"क्यों, दो दिनों बाद क्या है ?"

—"कोई खास बात तो नहीं," फिलिस बोली—"वह हम लोगों की बिदा का दिन है। इधर ओरछा के अलावा आसपास के कई गाँव वालों ने यह तय किया है कि उस दिन की सारी रात वे लोग मिल-जुलकर नाचेंगे। और कुछ न सही, अपने आप में यह इसलिए महत्वपूर्ण है कि यह शायद उनके प्यार का अनोखा प्रतिदान है…।"

—"वैसे तो तुम्हें आज भी रुकना चाहिए," मैंने फिलिस का वाक्य पूरा होते ही कहा—"गाँव में एक जगह बड़ी दिलचस्प शादी है। उसे देखकर कल चले जाना।"

पर हम लोगों के सारे प्रस्ताव कालिया ने हँसकर उड़ा दिए। इस दलील के साथ कि वह सरकारी गुलाम है और उसकी जान को रोने के लिये पचीस-पचास लोग नारायणपुर में अलग बैठे हैं। फिर इसके अलावा शादी देखने की उसकी कोई रुचि भी नहीं।

शादी की बात पर मुझे चमरू के ब्याह की याद आती है।

चमरू की पत्नी आडेर गाँव की है। करमे गोत्र की और चमरू की मंदार। एक काकसार की रात वह अपनी मंदार को घर ले आया। उस रात घोटुल के लड़कों ने सुबह तक नृत्य किया और सुबह-सुबह 'एग दो सीना' की रस्म अदा की गई। 'एग दो सीना' वह रस्म है जिसके अनुसार दूल्हे तथा दुल्हन को घर की खपरैल के नीचे खड़ा कर दिया जाता है। लड़की के सिर पर बाँस की एक छल्ले-नुमा टोपी पहिना दी जाती है और छत पर चढ़ कर लरके उन लोगों पर तीन बार पानी उलीचता है—ऐसे कि पानी की मोटी धार सीधे उस छल्ले में गिरे।

दूसरे दिन चमरू के पिता ने सारे गाँव वालों को शराब पिलाई और दो दिनों बाद लड़की अपने गाँव लौट गई।

इस बीच ब्याह की तैयारी खूब जोर-शोर से हुई। कुछ दिनों बाद जब 'मोलाहिना' (वधू की कीमत) की पूरी व्यवस्था हो गई तो नकद तीस रुपये, एक हाँडी शराब और एक सूअर का चढ़ाव लेकर चमरू के पिता लड़की के गाँव आए जिसके बिना वधू का आना असम्भव था।

लड़की की बिदाई का दृश्य कितना अनोखा लगता है। वधू सहित गाँव की अन्य सभी कुँआरी युवतियों का एक जुलूस-सा निकलता है। वे लोग घर-घर रुकते हैं, प्रत्येक से गले मिलते हैं और काफी लम्बा विलाप चलता है।

दोपहर में बेहद शराब पी जाती है। गाँव भर के खाने के लिए सारा सामान घोटुल में पहुँचा दिया जाता है जहाँ सब के सामूहिक भोजन की व्यवस्था

होती है। इस बीच पेड़ की कई-कई डगालियाँ तोड़कर युवतियाँ खूब नाचती हैं। लड़की के नातेदार उन डगालियों को एक विशिष्ट कमरे के भीतर दाखिल करना चाहते हैं पर लड़के वाले रोक लगाते हैं। यह कशमकश तब तक चलती है जब तक कि लड़के का पिता दस्तूर के मुताबिक युवतियों को पीने के लिए शराब नहीं दे देता। उसके बाद युवक युवतियों की उन्मुक्त चुहुल-बाजियाँ, खींचतान, पकड़-धकड़ और रात देर तक वर के आँगन में नशे से भरपूर नाच···

अचानक स्कूल के पास खड़ी जीप का हॉर्न जोर-जोर से बजने लगा और कालिया को चौंकना पड़ा।

—"अब तो उठे बिना काम नहीं चलेगा," कालिया ने हँसकर कहा और सिगार फेंककर खड़ा हो गया। ओरछा और काकोरी की तस्वीरों का ढेर ज्यों का त्यों छोड़कर फिलिस के साथ हम लोग भी उठ आए। बाहर के गेट के पास कुछ औपचारिक तथा अनौपचारिक बातें हुईं। मैंने खूब कस कर कालिया से हाथ मिलाया और क्षण भर बाद हम दोनों के हाथ हवा में उठ गए···

उस रात आखिर गाँव की शादी में हम लोग भी नहीं गए।

कालिया के जाने तक सर्दियों का सूरज पश्चिम की ओर काफी ढलक गया था। धूप धीरे-धीरे करके इतनी पीली और हल्की हो गई थी कि उसका स्पर्श भटकटैया-फूल की छुअन-जैसा लगता था। वही और दिनों जैसी जाड़े की उदास सन्ध्या जिसमें घर लौटे परिन्दों का शोर घुल रहा था, चरौटे के पौधे अपने-अपने पत्ते मूँद कर ऊँघने लगे थे और रह-रहकर किसी गाय या बछड़े के रंभाने की आवाज चारों ओर की पहाड़ियों से टकरा कर गूँज जाती थी।

जब कालिया की जीप निकल गई तो हम लोग फिर उन्हीं कुर्सियों पर आ बैठे। फिलिस ने बहुत थोड़ी देर हम लोगों का साथ दिया। कॉफ़ी तैयार करने वह किचन की ओर चली गई। फिर भी हम लोग निरुद्देश्य वहीं बैठे रहे क्योंकि एक बहाना कॉफ़ी के इन्तजार का भी था।

—"तुम काफी ऊब गए लगते हो," सहसा एड ने मुझसे कहा तो मैं बुरी तरह चौंक कर उसे देखने लगा।

—"कौन ?" मैं बोला—"नहीं, यह बात नहीं। दरअसल काम कुछ रह नहीं गया है इसलिए शायद वक्त नहीं कटता। फिर जैसे-जैसे जाने का दिन पास आता जाता है, प्रतीक्षा भी उतनी ही बड़ी और लम्बी लगती है—यह जानते हुए भी कि वास्तविकता यह नहीं है।"

कुर्सी छोड़कर एड धीरे-धीरे टहलने लगा। तबीयत अलील या सुस्त हो अथवा मन पर जरा भी उदासी का वज़न हो तो शाम दुश्मन लगती है।

मुझे कालिया पर क्रोध आने लगा कि उसे यहाँ नहीं आना चाहिए था या आया भी था तो कम से कम मेरा आग्रह रखते हुए एक रात के लिए ठहर जाना चाहिए था। चंद और घंटों में भला कौन-सा कहर टूट पड़ता ?

सामने शिरीष, सिवना, कनक-चम्पा, ओड़छा और जामुन के पेड़ निश्शब्द खड़े थे। लगता है, पेड़ के एक ही रंग के पत्तों में अक्सर कई-कई रंग छिपे होते हैं—सुबह-सादिक में एक रंग झाँकता है, दोपहर की आइना वाली धूप में दूसरा और साँझ के उदास-उदास धुँधलके में तीसरा तथा बिल्कुल अलग। थोड़ी देर पहले दम-तोड़ती धूप का जो फीका टुकड़ा, जामुन और अंजन की ऊपरी फुनगियों पर फैला हुआ था, साँझ उसे भी पहाड़ी पीछे डाल आई। पहाड़ियों की चोटियों पर जमा कोहरा आहिस्ते-आहिस्ते फैलकर अब गाँव की ओर बढ़ा आ रहा था।

—"एड !"

एकाएक फिलिस की आवाज से पहिले मैं चौंका। देखता हूँ कि इतनी देर की प्रतीक्षा के बाद भी कॉफ़ी नहीं आई और चेहरे पर अजब-सा भाव लिए फिलिस खाली हाथ खड़ी है।

—"तुमने मुझे यह कैसे नहीं बताया कि लाली इतना बीमार है ?" एड के पास आते ही बिल्कुल कैफ़ियत तलब करने के अंदाज़ में फिलिस ने पूछा।

—"क्यों, क्या हो गया ?"

—"अभी रेको मिलने आई थी। बता रही थी कि···"

—"रेको कब आई ? हम लोग तो यहीं बैठे हैं।"

—"पिछले दरवाजे से आई थी," फिलिस ने कहा—"सुनो, मैं उससे अभी मिलना चाहती हूँ। कौन जाने किस क्षण क्या हो जाय।"

कई क्षणों तक एड ने कोई जवाब नहीं दिया। एकाध पल वह सोचता रहा फिर दोनों हाथ गोद में डालकर वह कुर्सी पर बैठ गया। वैसे कई पल युगों की तरह निकल गए लेकिन हम तीनों में से कोई भी अपनी जगह से नहीं हिला केवल मैंने उस मौन को भंग करते हुए सिगरेट जलाई और चुपचाप पीने लगा।

एड की विवशता मैं अच्छी तरह समझता हूँ। क्या हर व्यक्ति चाहने के बावजूद हर काम कर सकता है ? अक्सर कई काम निहायत छोटे होते हैं लेकिन उनके साथ की असमर्थताएँ इतनी बड़ी होती हैं कि लाँघी नहीं जातीं। लाली का प्रसंग आने पर इसीलिए एड अपंग हो जाता है।

—"चलो।" अंत में उसने हारे हुए स्वर में कहा और फिलिस के पीछे पीछे हम लोग बाहर निकल आए।

लाली का रोग आज का नहीं, काफी पुराना है। पहिले पहल जब एड इस गाँव में आया तो कइयों की बीमारियों के साथ लाली का राजरोग भी उसके

निकट पहुँचा। छोटी-मोटी बीमारी वालों के साथ लाली भी किसी गोली या पुड़िया-उड़िया ने छुटकारा पाना चाहता था। एड तब क्या करता ? न तो साफ-साफ इन्कार करना आसान बात थी और न उसे धोखे में रखकर अपने हाथों मौत के मुँह में ढकेलना। कुछ अरसे तक न चाहते हुए भी एड को उसे भुलावे में रखना पड़ा। लेकिन दूसरों को धोखा देना भले ही सहज हो अपने को छलना बहुत कठिन होता है। एड ने आखिर एक दिन सारी बातें उसके सामने खोलकर धर दीं और सलाह दी कि अपने इलाज के लिए उसे बाहर जाना चाहिए। इस रोग को लेकर यहाँ पड़े रहने का मतलब है कि…।

—"मैंने उसे हर बार कहा," एड ने एक दिन मुझे बताया था—"कि यहाँ पड़े रहने का मतलब आत्महत्या करना है। सबसे नज़दीक का अस्पताल नारायणपुर में है लेकिन वहाँ जाना न जाना एक ही बात है। मैं उसे जगदलपुर ले जाना चाहता था लेकिन वह तैयार ही नहीं हुआ। मेरे सामने वह हूँ-हूँ करता, अपनी रज़ामन्दी भी जाहिर कर देता लेकिन रेको से मालूम होता कि वह बाहर जाने के नाम से चिढ़ उठता था। फिर जब मुझसे वह छिपने लगा तो मैंने उस बारे में कहना ही छोड़ दिया…।"

—"क्या वह मरना ही चाहता है ?"

एड ने असंतोषपूर्वक अपने दोनों कंधे उचकाकर आहिस्ते से छोड़ दिए और बोला—

—"शायद ! तुम्हारे इस सवाल का जवाब हाँ भी हो सकता हैं और नहीं भी। क्या कोई अपनी मर्ज़ी से कभी मरना चाहता है ? निश्चय ही लाली भी इसका अपवाद नहीं होगा। लेकिन वह जाने के लिए क्यों तैयार नहीं हुआ, इसका जवाब शायद मेरे पास भी नहीं। शायद उसे पूरी तरह विश्वास नहीं कि वह मर जाएगा। संभव है, मन ही मन वह किसी करिश्मे की आस लगाए बैठा हो। बात यह है कि आदमी मुँह से चाहे जितना कहे, अन्तिम क्षण तक भी यह नहीं सोचता कि वह मर जाएगा। कहीं-न-कहीं एक दबी हुई आस उसे बराबर जिलाए रखती है और जिस क्षण उसे पूरी तरह विश्वास हो जाता है, वह बच भी नहीं पाता…"

सचमुच क्या ऐसी ही किसी आस ने लाली के हृदय में धड़कन बना रखी है ?…उस रात उसे देखते हुए मेरे मन में यही आया था।

लाली की वह छोटी और झुकी-सी झोपड़ी अँधेरे में स्याह और भयानक गुफा-सी लग रही थी। न भीतर, न बाहर, रोशनी की एक किरन भी कहीं नहीं थी। दहलीज़ के बहुत पास आने पर देखा कि सामने पड़ने वाले कमरे में भी वही अँधेरा पसरा पड़ा था सिवाय एक बुझी-बुझी अँगीठी के जिसका धुँआँ सारे कमरे में गुँगवा रहा था।

—"रेको !" फिलिस ने सहमती आवाज़ में पुकारा।

—"लाली !" क्षण भर बाद अमरसिंह ने दुबारा आवाज़ दी।

उस स्याही-सने परदे में कई पलों बाद जो आकृति आकर खड़ी हो गई वह रेको की थी। हम लोग भीतर आकर एक के पीछे एक कमरे में खड़े हो गए। विना दिया वत्ती के उस वन्द-बन्द और गुँगवाते कमरे में हम लोग उस वक्त तक यूँही खड़े रहे जब तक कि अँगीठी को फूँकें मारकर रेको ने जला न लिया।

—"लाली," ज़रा रोशनी होने पर अमरसिंह ने आगे बढ़कर धीरे-से कहा—"मेमसाहब आई हैं।"

मैं नहीं जानता कि लाली ने सुना अथवा नहीं। धरती के जिस नंगे कोने पर उसका शरीर लिटा हुआ था, उसके नीचे एक चीथड़ा हो रही मैली गुदड़ी गुड़ी-मुड़ी पड़ी थी, बस। न सिरहाने कुछ, न पायताने और न शरीर पर कोई ओढ़ना।

—"लाली !" इस बार फिलिस सीधे उसके बिस्तर तक चली गई और सिरहाने के पास बैठकर वेहद ममता भरे स्वर में बोली—"देखो, हम सब तुम्हें देखने आए हैं।"

पिता केये उसी कमरे के एक कोने पर सो रहा था पर उसके अस्तित्व का पता उस क्षण तक नहीं चल पाया जब तक कि इस शोर-आहट से वह उठकर न बैठ गया। हम लोगों का ध्यान उस ओर नहीं था। बैठकर कुछ देर वह खाँसता रहा फिर अपने आप ही बड़बड़ाया—"हे भगवान, हे भगवान, हफ़्ता हो गया मुँह में पेज-पसिया तक नहीं···।"

फिलिस ने केवल निमिषभर के लिए बूढ़े केये को पलटकर देखा फिर लाली की ओर देखने लगी।

हम लोग चुप, कमरे में फिर वही सन्नाटा। अँगीठी में कुछ और लक-ड़ियाँ जोड़कर रेको ने तेज़ कर दी जिसकी रोशनी में हर साँस के साथ लाली की पसली-पसली हिलती दिखाई देने लगी। लाली की कोटरों में धँसी आँखें अब हमारी ओर देख रही थीं।

सहसा मुझे उस दिन की याद आ गई जब हम लकड़ी काटने वन जा रहे थे और मासा के पास घंटों बैठा लाली काकसार के लिए अपनी वेशभूषा तथा सज्जा तैयार करवा रहा था। उस दिन का आशावान तथा उत्साही युवक क्या इसी मृत-सी देह में धड़क रहा है ?

—"काकसार अब जल्दी ही आएगा, लाली !" मैंने मन-ही-मन कहा। हालाँकि मेरी निगाहों में खूब घने शालवनों से घिरा वह छोटा-सा द्वीप तैर आया था जिसके सिरहाने बैठकर उस दिन पीरचे की पत्नी ने गगनव्यापी चीत्कार किया था। देखता हूँ कि द्वीप कुछ बड़ा हो गया है—केवल इतना बड़ा, जितनी लाली की देह है। आसपास के खिलौने-पालने कुछ नहीं हैं, सिर्फ एक वह चटाई पड़ी है

जिस पर लाली अक्सर सोया करता है। चारों दिशाओं में बँधी लाल तूस की झण्डियाँ हवा में ज़ोर-ज़ोर से फरफरा रही हैं !

और ओरछा का वह अन्तिम दिन !

हमें माड़िन नदी को अलविदा कहना था। उस दिन सुबह से जो व[illegible] शुरू हुई तो उसका अन्त उस गाँव की सीमा पार करने से पहिले नहीं [illegible] सारी ज़रूरी चीज़ों की पैकिंग पहिले ही हो चुकी थी लेकिन फिर भी ऐसे [illegible]ामा[illegible]ा ढेर था जिन्हें चाहने पर भी ले जाना मुमकिन नहीं था। दो दिनों [illegible] भर उन छोटी-मोटी कई चीज़ों का वितरण हुआ जो एड लोगों के लि[illegible]ार थीं और जिनका उपयोग गाँव वाले कर सकते थे। इसमें भी सबसे अधिक भाग्यशाली अधिकार मासा का ही रहा। घरेलू काम के कई सामानों के अलावा उसके अधिकार में वह दवाइयों का बक्सा आया जिसमें फर्स्ट-एड का सारा सामान मौजूद था।

मेरा ख्याल था कि वह सब देख-सुनकर मासा हैरान होगा या शायद उसे बेहद खुशी होगी लेकिन मुझे निराशा हुई कि उसने बिना कोई महत्व दिए अत्यन्त साधारण भाव से वह सब स्वीकार कर लिया। यहाँ तक कि जब एड ने कहा— "मासा, हम लोग कल जा रहे हैं ?"

तो कुछ देर तक मुस्कुराता हुआ वह एड की ओर ताकता रहा फिर अपने सजीले स्वभाव के अनुसार मुँह मोड़कर दूसरी ओर देखने लगा। एड ने मासा सहित उस सारे परिवार का आभार प्रकट किया। कहलवाया कि दो बरसों में उन लोगों ने जो प्रेम, सहयोग और आत्मीयता दी है, वह भूलने की चीज़ नहीं। अपने देश में जब-जब वे लोग ओरछा की याद करेंगे सबसे पहिले मासा तथा उसके घर की ही याद आएगी।

—"आना," मासा के बूढ़े पिता ने जरा आत्मीयतापूर्ण तथा घरेलू स्वर में कहा—"कभी-कभी तो आना। मतलब यह कि जब भी फ़ुरसत मिले।"

मैं बताना चाहता था कि ये लोग इस गांव में अब कभी नहीं आएँगे। इनका देश बहुत दूर है, इतनी दूर कि एक बार पहुँचने के बाद वहाँ से आना बड़ा कठिन है। लेकिन कहा नहीं। मुझे उस दिन की याद आ गई जब मासा के साथ दो-तीन और युवक बैठे थे, एड अपने घर की कोई बात बता रहा था और मासा ने पूछ लिया था कि उसका घर कितनी दूर है।

—"बहुत," कहकर ही हम लोग चुप रह गए थे। किसी भी प्रकार समझ में नहीं आया कि उन्हें दूरी किस तरह समझाई जा सकती है।

—"जगदलपुर से भी दूर ?" मासा के साथ वाले युवक ने आश्चर्य में भर पूछा था।

—"हाँ, कहकर मैंने बड़ी देर तक कोशिश की थी कि और कुछ नहीं तो एक धुँधला-सा खाका ही उनके दिमाग में आ जाय पर वह हुआ [illegible], मासा के बूढ़े पिता को समझा सकना तो और भी कठिन है।

कुछ इसी तरह के सवालों से उस अन्तिम दिन भी एकाध बार उलझन हुई [illegible] मिलने आने वालों का सिलसिला सुबह से ही लग गया और शाम तक बराबर [illegible]। लोग प्रेमपूर्वक शराब की एक बोतल लेकर आते और उनके साथ [illegible] फिलिस को भी पीना पड़ता। यद्यपि दोनों में उतनी सकत नहीं थी लेकिन [illegible] उन्होंने थोड़ा-थोड़ा करके सबका साथ दिया।

रात [illegible] ने के बाद घोटुल में ढोल बजने की आवाज आने लगी। अगल-बगल [illegible] में घुँघरुओं के पटके-झटके जाने का स्वर बहका, बहका और थोड़ी देर बाद बहुत से नवयुवक तथा नवयुवतियों का समूह कॉटेज के सामने [illegible] मैदान पर इकट्ठा होने लगा।

यह जैसे दूसरी सौगात थी जिसकी तैयारी पिछले दो दिनों से हो रही [illegible]। उस रात जैसा भव्य तथा समर्पणयुक्त नृत्य हुआ वैसा फिर कभी देखने का अवसर कम-से-कम मुझे नहीं आया। पच्चीस-तीस युवतियाँ और उससे अधिक युवक। शराब की समूची हाँडी उस दिन भट्टी से सीधे वहीं आ गई थी और परिमाण तथा मात्रा किसी बात की कोई रोक-टोक नहीं थी। पहिले युवक-युवतियों से ही नृत्य आरम्भ हुआ लेकिन चाँद के निकलने तक बहुत से प्रौढ़ तथा गुजरे हुए लोग भी शामिल हो गए। कुछ देर बाद मैंने देखा कि बूढ़े, बच्चों तथा अकेले मुझे छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति नृत्य के उस विशाल घेरे का एक गतिशील अंग बन गया है। अगर [illegible] भेद न होता तो एड या फिलिस को भी पहिचान पाना असम्भव था। वही पोशाक, वही वेशभूषा [illegible] तथा कलाइयों में गिलट के वही ज़ेवर जो दूध-जैसी चाँदनी में रह-रहकर झलक जाते थे..."

पौ फटने में अभी बहुत देर थी। रात शायद अढ़ाई बजे तक नाच चलता रहा यदि एड ने सुबह अपने चलने की बात कहकर जल्दी न की होती तो नृत्य सचमुच सारी रात चलता रहता और वैसी सूरत में जाने क्या होता?

एड ने गैरेज के बाहर जीप निकाल ली थी। ट्राली में सारे सामान लादे जा चुके थे और निकल चलने में कोई देर न थी। केवल मैं और फिलिस कॉटेज में घुसकर अन्तिम बार देख रहे थे कि कोई चीज़ रह तो नहीं गई।

—"लो, आखिर वह समय आ ही गया!" फिलिस ने अपने बेड-रूम की खिड़की की ओर देखते हुए कहा। मद्धम-सी रोशनी और पौ फूटने के पहिले का हल्का उजाला। मैंने देखा उस छोटी-सी खिड़की पर परदा ज्यों-का-त्यों पड़ा था।

हवा के झोंके के कारण कभी वह धनुषाकार होकर फूल जाता और कभी सीखचों से चिपककर रह जाता। बाहर की घास पर ढेर शबनम पड़ी थी !

फिलिस की उस बात पर मैंने कुछ नहीं कहा और हम लोग बरामदे में निकल आए। थोड़ी ही देर में घर कितना उजाड़ दीखने लगा था ! खाली कमरे, सूनी दीवारें और रद्दी कागज़ तथा फलों के छिलकों आदि से पटा हुआ फ़र्श। यह विश्वास करना ही कठिन था कि थोड़ी देर पहिले हम वहाँ रह रहे थे। फूलों के गमले और अन्य पौधे कल-जैसे ही आज खड़े थे लेकिन एक नज़र से अधिक फिलिस ने उन्हें नहीं देखा। अभी कल शाम तक उसने सब की देखभाल की थी। अजीब बात है कि जब तक आदमी किसी चीज़ से जुड़ा रहता है अपने मोह को काट ही नहीं पाता लेकिन जैसे ही उससे अलग होता है, सारा मोह अपने आप कट जाता है।

बाहर एड ने हॉर्न बजाया।

जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाकर फिलिस आँगन में निकल गई। जीप की ओर बढ़ने से पहिले एक बार आँखें घुमाकर उसने चारों ओर देखा जिसमें कोहरा तथा धुंधभरी पहाड़ियाँ थीं, सामने का परिचित जंगल था, बगल वाला बेर का पेड़ था और था गहरी नींद में सोया हुआ गाँव। बाहर घास पर ढेर शबनम पड़ी थी।

"अलविदा ओरछा !" मैंने मन-ही-मन कहा और भारी मन से गाड़ी पर बैठ गया। फिलिस के अनुसार प्रियजन सामने हों तो बिदा की घड़ी कठिन हो जाती है ! गाँव वालों के जागने के पहिले ही हम लोग दूर निकल जाना चाहते थे। सचमुच, उस क्षण कोई नहीं था लेकिन जल के बुलबुले की तरह धुन्ध और कोहरे की परतों में ढँकी जो कई-कई आकृतियाँ उभरी आ रही थीं, उनसे आँखें चुराना आसान बात न थी। वहाँ पहिले दिन की कोसी थी, रेको का चिर-उदास तथा ढलका हुआ मुख था, लाली की चुभती हुई असहाय आँखें थीं, केये का जर्जर शरीर था, गूमा का वीरान चेहरा था, मासा की ममतापूर्ण मुस्कान थी और थे ऐसे अनगिनत नुक़ूश जो साथ-साथ मिलकर सामने के सारे माहौल में छाए हुए थे।

किसी ने कोई बात नहीं की। एड ने गाड़ी स्टार्ट कर दी और एक बार हम लोगों की ओर देखकर स्टीयरिंग सम्हाल ली। फिलिस ने अन्तिम बार बाहर झाँककर धुन्ध में डूबे अपने कॉटेज की ओर देखा। उसी समय अचानक गाड़ी चल दी।

अठारह महीनों की परिचित राह, जानी-पहिचानी पगडंडियों, उन पर एक सिरे से खड़ी ऊँची और सफेद कलगी वाली घास तथा सैकड़ों बरस पुराने शालवनों की अगली क़तार—सब तेज़ी से पीछे छूटने लगे। यहाँ तक कि उन वनों का शोर भी हम पीछे छोड़ आए। लेकिन अजीब बात है कि जो शालवन पीछे छूटे जा रहे थे, तीर की तरह वही सब सामने भी आते जा रहे थे !

• • •

एक मड़िया युवती
अपने स्वाभाविक
मधुर रूप में
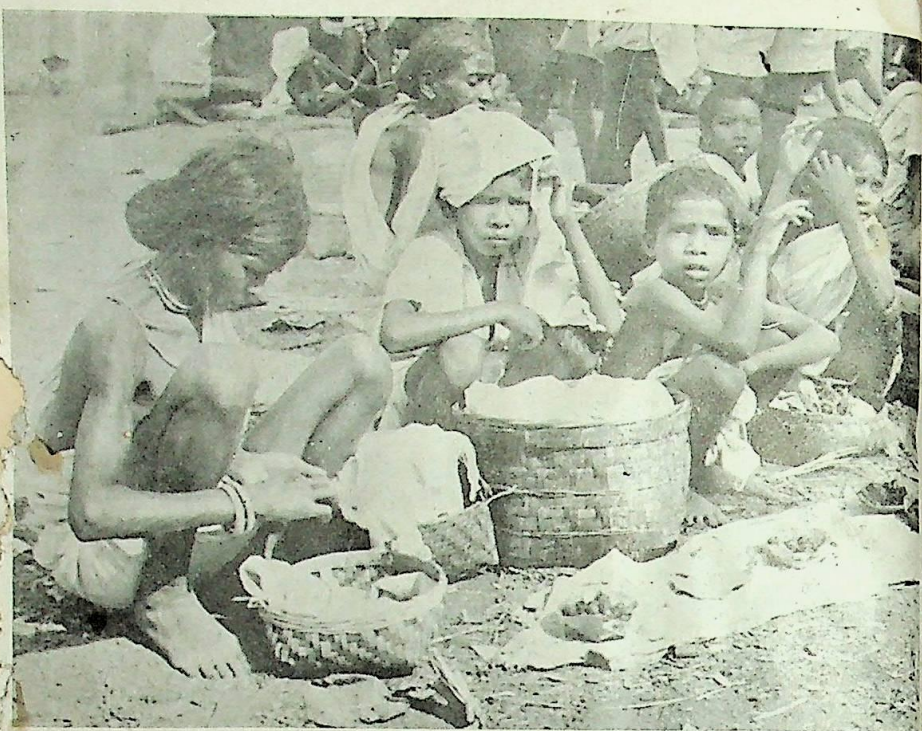
बस्तर के बाज़ार का एक दृश्य (लोहांडीगुडा)

बस्तर के बाज़ार का एक दृश्य (लोहांडीगुडा)

बस्तर के एक बाजार का दृश्य (लोहांडीगुडा)
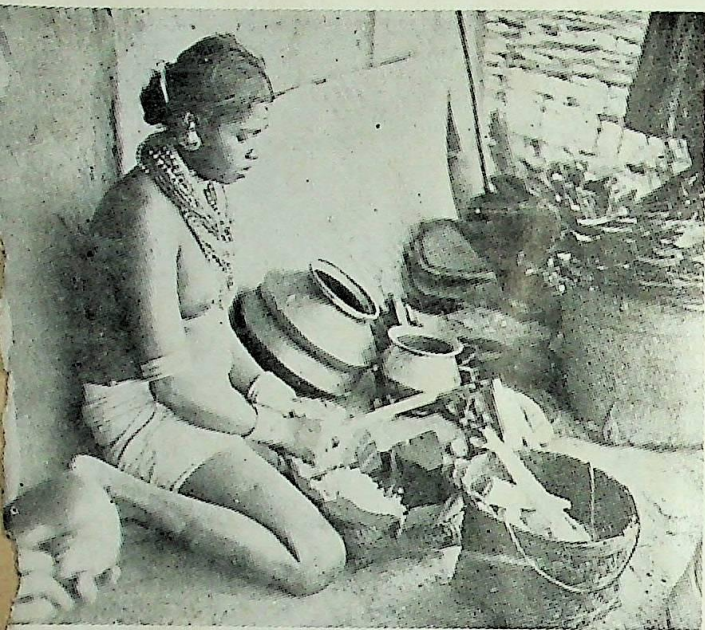
घर पर रसोई की तैयारी
करती हुई युवती—रेको
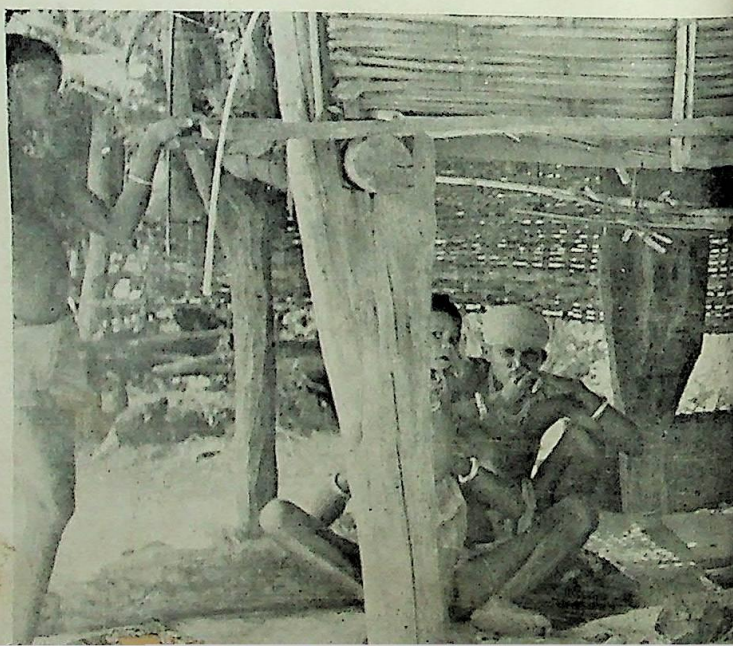
अनाज भण्डार, जिसके नीचे सर्दियों में
बैठक होती है ।

अबूझमाड़
(बस्तर)
की नारियाँ
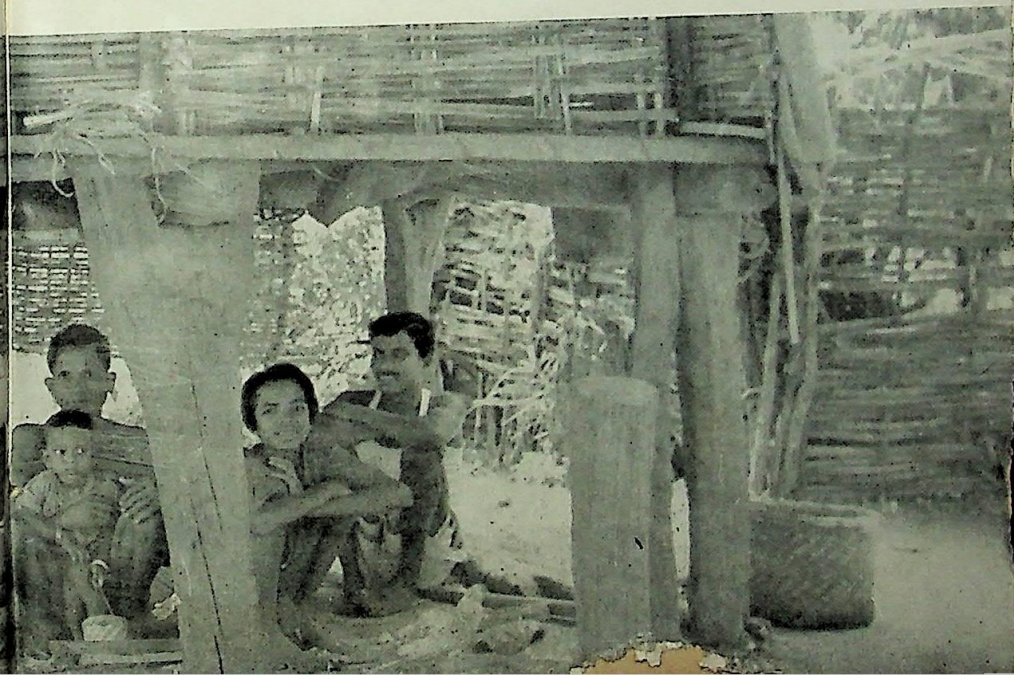
अबूझमाड़ (बस्तर) का एक काकसार नृत्य

अबूझमाड़ (बस्तर) का आदिवासी युवक

एक तरुण शिकारी—अभी तो इब्तिदा है ।